

प. २

चुभते चौपदे

लेखक—महाकवि 'हरिऔध'

चुभते चौपदे

प्रणेता

स्व० पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

प्रकाशक

हिंदी-साहित्य-कुटीर

वाराणसी-१

प्रकाशक
हिंदी-साहित्य-कुटीर
हाथीगली, वाराणसी-१

नूतन द्वितीय संस्करण
एक हजार पाँच सै प्रतियाँ

मूल्य — २५-००

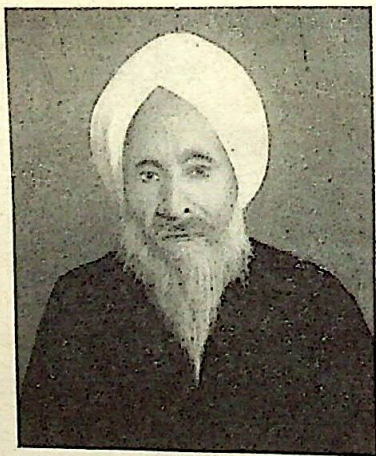
सन्, १९५९

1215

३३१-५१ — P

मुद्रक

केशव कृष्ण पावगी
हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, वाराणसी



ग्रन्थकार

साहित्यवाचस्पति, साहित्यरत्न, कविसम्राट्
स्व० पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

दो दो बातें

मैंने 'बोलचाल'* नाम की एक पुस्तक लिखी है। बाल से लेकर तलवे तक जितने अंग हैं उन सब अंगों के कुल मुहाविरों पर, इसमें पैंतीस सौ से कुछ अधिक चौपदे हैं। अंगों के मुहाविरों के अलावा और भी बहुत से मुहाविरे काम पड़ने पर इसमें आ गये हैं। चौपदे बिल्कुल बोलचाल के रंग में ढले हैं, नमक-मिर्च लगने पर बात चटपटी हो जाती है, गढ़ी और सीधी-सादी बातें भी एक सी नहीं होतीं, चौपदे और बोलचाल की भाषा में अगर कुछ भेद है तो इतना ही।

कोई दिन था कि हम कुछ थे; कुछ नहीं, बहुत कुछ थे। देवते हमारा मुँह जोहते थे, स्वर्ग में हमारी धूम थी, और धरती हमारे उधारने से ही उधरती थी। हम आसमान में उड़ते, समुद्र को छानते, जंगलों को खँगालते और

* 'बोलचाल' नामक पुस्तक भी हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी से प्रकाशित हुई है। मूल्य ६।)

(२)

पहाड़ों को हिला देते थे। दुनिया में हमारे नामलेवा थे, देस देस में हमारी धाक थी, दिशायें हमारी जोत से जग-मगाती थीं और आसमान के तारे हमें आँख फाड़ फाड़ कर देखते थे। हम अंधकार में उँजाला करते थे, वन्द आँखों को खोलते थे, सोतों को जगाते थे, और उकठे काठ को भी हरा भरा बना देते थे। सूरमापन हम पर निछावर होता था, दिलेरी हमारे बाँट में पड़ी थी, बहादुरी हमारा दम भरती थी और आनवान हमारा बाना था। हम बेजान में जान डालते थे, सूखी नसों में लहू भरते थे, विगड़ों को बनाते थे, गिरों को उठाते थे, बेजड़ों की जड़ जमाते थे और भूलों को राह पर लगाते थे। बड़े बड़े अठकपाली हमारे सामने अपना अठकपालीपन भूल जाते थे, हमारा तेवर बदलते ही बेतरह आँख बदलनेवाले राजा महाराजाओं का रंग बदल जाता था, और दुनिया में हवा बाँधनेवालों के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगती थीं। आज ए बातें मुँह पर नहीं लाई जा सकतीं, अब हमारा रंग इतना विगड़ गया है कि हम पहचाने भी नहीं जा सकते। हमीं लोगों में ऐसे लोग हैं जो यह जानते

(३)

ही नहीं कि हम क्या और कौन थे और अब क्या हो गये । इसमें न किसी का जादू काम कर रहा है न किसी का टोना, न दैव हमारे पीछे पड़ा है, न बुरा भाग, जो कुछ हम भोग रहे हैं वे हमारी करतूतों के फल हैं, और आज भी वे हमें रसातल ले जा रही हैं ।

आज दिन हमारे सिरधरों का ही सिर नहीं फिर गया है, आगे चलनेवाले भी आगे लगा रहे हैं, और भगवा पहननेवाले भी भाँग खाये बैठे हैं । जिन को वीर होने का दावा है, वे भाइयों की मूँछें उखाड़ कर मूँछ मरोड़ रहे हैं, दूसरों का घर मूस कर अपना घर भर रहे हैं, औरों के लहू से हाथ रँग कर अपना हाथ गरम कर रहे हैं, सर्गों का पेट काट कर अपना पेट पाल रहे हैं, और बेवसों के घर को जला कर अपने घर में घी के दिये वाल रहे हैं । पूँजीवालों का पेट दिन दिन मोटा हो रहा है, पर किसी सटे पेटवाले को देखते ही उनकी आँख पर पट्टी बँध जाती है । संडे-मुसंडे डंडे के बल माल भले ही चाव लें, पर भूख से जिनकी आँखें नाच रही हैं उनको वे कानी कौड़ी भी देने के खादार नहीं । जो हमारा मुँह देख कर जीते हैं, हम

(४)

उन्हीं को निगल रहे हैं। और जो हमारे भरोसे पाँव फैला कर सोते हैं, हम उन्हीं को आँखें बन्द करके लूट रहे हैं। हमीं में दूब कर पानी पीनेवाले हैं, आँख में उँगली करनेवाले हैं, खड़े बाल निगलनेवाले हैं, आग लगा कर पानी को दौड़नेवाले हैं, रंगे सियार हैं, भींगी विल्ली हैं और काठ के उल्लू हैं।

आज हमारे घरों में फूट पाँव तोड़ कर बैठी है, वैर अकड़ा हुआ खड़ा है, अनवन की वन आई है और रगड़े झगड़े गुलछरें उड़ा रहे हैं। हम से लम्बी लम्बी बातें सुन लो, लम्बी डगें भरने की कहानियाँ कहलवा लो, लेकिन लम्बी तान कर सोना ही हमें पसन्द है। आँख होते हमें सूझता नहीं, कान होते हम सुनते नहीं, हाथ होते हम बेहाथ हैं, और पाँव होते बेपाँव। समझ चल बसी, विचारों का दिवाला निकल गया, आस पर ओस पड़ गई, सूझ को पाला मार गया, मगर कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। बेटियाँ विक रही हैं, माँ वहनें लुट रही हैं, जोरू पिस रही है, मगर हमें दाँत पीसना भी नहीं आता। दूसरे धूल में फूल उगाते हैं, हमें फूल में भी धूल ही हाथ आती है। लोग काँटों

(५)

में फूल चुनते हैं, हम काँटों में उलझ उलझ मरते हैं। आबरू उतर गई, पत पानी चला गया, बड़ाई धूल में मिल गई, मगर हम धूल फाँकने में ही मस्त हैं।

हम आसमान के तारे तोड़ना चाहते हैं, मगर काम आँखों के तारे भी नहीं देते। हम पर लगा कर उड़ना चाहते हैं मगर उठाने से पाँव भी नहीं उठते। हम पालिसी पर पालिश करके उस के रंग को छिपाना चाहते हैं, पर हमारी यह पालिसी हमारे बने हुए रंग को भी बदरंग कर देती है। हम राग अलापते हैं मेल-जोल का, मगर जाने कहाँ का खटाराग पेट में भरा पड़ा है। हम जाति जाति को मिलाने चलते हैं, मगर ताव अछूतों से आँख मिलाने की भी नहीं। हम जाति-हित की तानें सुनाने के लिये सामने आते हैं, मगर ताने दे दे कलेजा छलनी बना देते हैं। हम कुल हिन्दू जाति को एक रंग में रँगना चाहते हैं, मगर जाति जाति के अपनी अपनी डफली और अपने अपने राग ने रही सही एकता को धता बता दिया है। हम चाहते हैं देस को उठाना, पर आप मुँह के बल गिर पड़ते हैं। हमें देस की दशा सुधारने की धुन है, पर आप सुधारने पर भी नहीं सुधरते। हम

(६)

चाहते हैं जाति की कसर निकालना, मगर हमारे जी की कसर निकाले भी नहीं निकलती। हम जाति को ऊँचे उठाना चाहते हैं, पर हमारी आँख ऊँची होती ही नहीं। हम चाहते हैं जाति को जिलाना, मगर हमें मर मिटना आता ही नहीं।

हिन्दू जाति अपनी भूलभुलैयाँ में वेतरह फँसी है, इस से हमारा जी दुखी है, हमारा कलेजा चोट खा रहा है, दिल में फफोले पड़ रहे हैं। हम ने 'बोलचाल' में दिल के फफोले फोड़े हैं, वे उसमें चौपदे की सूरत में फूटे हैं। उस में वे बिखरे हुए हैं, इस पुस्तक में एक जगह जमा किये गये हैं, उसके छपने में अभी देर है, इधर देर की ताव नहीं। हमें जल्दी इसलिए है कि जितना ही जल्द हिन्दुओं की आँखें खुलें, उतना ही अच्छा। हमें उनका जी दुखाना, उन्हें कोसना, उन्हें बनाना, उन्हें खिजाना, उनकी उमंगों को मटियामेट करना पसन्द नहीं, अपने हाथ से अपने पाँव में कुल्हाड़ी कौन मारेगा, अपनी उँगलियों से अपनी आँखों को कौन कुचोलेगा। मगर अपनी बुराइयों, कमजोरियों, भूल-चूकों, ऐवों, लापरवाइयों और नासम-

(७)

झियों पर आँख डालनी ही पड़ेगी, बिना इसके निर्वाह नहीं। दवा कड़वी होती है, मगर उसको पीते हैं, फेंक नहीं देते। हमारे चौपदे कुल कड़वे हों, मगर वे हित-जल के गडुवे हैं। अगर उनमें से किसी एक के पढ़ने से भी जाति के कान खड़े हुए और उसकी आँखें खुलीं, हमारे माई के लाल सच्चे लाल बने, तो मेरे मुँह की लाली रह जावेगी, और मैं समझूँगा कि मैंने वामन होकर भी चाँद को छू लिया।

‘हरिऔध’

सदावर्त्ती महला, आजमगढ़,

फरवरी १५, १९२४

विषय-सूची

गागर में सागर

१ देवदेव		१
२ सच्चे देवते		४

जाति के जीवन

१ साहसी		७
२ सच्चे वीर		१०
३ हमारे सूरमें		११
४ आनवान वाले		१३

हित गुटके

१ याद		१५
२ ललक		१७
३ कचट		१७
४ क्या से क्या		१६
५ क्या थे क्या हो गये		२१

काम के कलाम

१ चेतावनी		२३
२ सजीवन जड़ी		३२
३ दूते की बात		३९
४ सूझ बूझ		४२
५ पते की बातें		४४

(२)

६ सुधार की बातें		४६
७ भाग		४७
८ मेल जोल		४६
९ सबल निबल		५३

सजीवन बूटी

१ दिल के फफोले		५६
२ अपने दुखड़े		६७
३ जी की कचट		७७
४ समय का फेर		८०

जगाने की कल

१ फटकार		८४
२ लान तान		९२
३ बढ़ावा		९६

विपत्ति के बादल

१ कोर कसर		१००
२ फूट		१०८
३ भारी भूल		१०९
४ एका की कमी		११०
५ वेतावी		१११
६ वेवसी		११२
७ छूतछात		११५

(३)

नाड़ी की टटोल

१ हमारे मनचले	...	११७
२ सिरधरे या सिरफिरे	...	११८
३ ढोंगिये	...	११९
४ हमारे साधू संत	...	१२२
५ कसौटी	...	१२६
६ परख	...	१२८
७ वे और हम	...	१३०
८ पोल	...	१३४

जाति राह के रोड़े

१ ईसवी पंजा		१३६
२ ताली		१३८
३ वोट		१४०
४ चालाक लोग		१४१

आठ आठ आँसू

१ चार जाति		१४३
२ चार नाते		१४५
३ हमारी देवियाँ		१४७
४ निघरघट		१४९
५ बेवार्यें		१५०
६ नापाकपन		१५४
७ वेटियाँ		१५५

(४)

८ बेजोड़ व्याह		१५८
९ बूढ़े का व्याह		१६०
१० कच्चे फल		१६२
११ लथेड़		१६२
१२ लताड़		१६४

जन्मलाभ

१ लोकसेवा		१६६
२ जातिसेवा		१६६

पारस परस

१ धर्म		१७१
२ धर्म की धाक		१७३
३ धर्म की धुन		१७४
४ धर्म का बल		१७६
५ धर्म का कमाल		१७६
६ धर्म की करामात		१८१

परिशिष्ट

१ जी की कचट		१८४
२ निकम्मापन		१८७
३ सच्चे काम करनेवाले		१८७
४ ढाढ़स		१९०

चुभते चौपदे

अथवा

देश-दशा

प्रणेता

स्व० पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
'वैदेही-वनवास', 'प्रियप्रवास', 'रसकलस'
आदि के रचयिता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

चुभते चौपदे

गागर में सागर

देवदेव

चौपदे

अब बहुत ही दलक रहा है दिल ।
हो गई आज दसगुनी दलकें ॥
ऊबता हूँ उबारने वाले ।
आइये हैं बिछी हुई पलकें ॥

डाल दे सिर पर न सारी उलझनें ।
जी हमारा कर न डाँवाडोल दे ॥
इन दिनों तो है विपत खुल खेलती ।
तू भला अब भी पलक तो खोल दे ॥

२

चुभते चौपदे

झुल बनाये नहीं बनी अब तक ।
 जान पर आ बनी बचा न सके ॥
 हम कहें क्या तपाक की बातें ।
 आप की राह ताक ताक थेके ॥

मान औ आन वान महलों पर ।
 डाह बिजली अनेक बार गिरी ॥
 हो गये फेर में पड़े बरसों ।
 आप की दीठ आज भी न फिरी ॥

बैर है बरबाद हम को कर रहा ।
 फूट का है दुंद घर घर में मचा ॥
 हम बचाये बच सकेंगे आप के ।
 आप मत अपनी निगाहें लें बचा ॥

हम बड़े ही बखेड़िये होवें ।
 आप यों मत उखेड़िये बखिये ॥
 पास करना अगर पसंद नहीं ।
 गाह गाहे निगाह तो रखिये ॥

गत हमारी बना रहे हो क्यों ।
 मिल न, गद की सकी हमें लकड़ी ॥
 पाँव हम तो रहे पकड़ते ही ।
 पर कहाँ बाँह आप ने पकड़ी ॥

गागर में सागर

३

देखिये आप आ कलेजे में ।
 पड़ गये कुछ अजीब छाले हैं ॥
 आप के हाथ अब निवाह रही ।
 आप ही चार बाँहवाले हैं ॥

खोलिये पलकें दया कर देखिये ।
 मूँछ के भी बाल अब हैं बिन रहे ॥
 दिन फिरेंगे या फिरेंगे ही नहीं ।
 ऊँच दिन हैं उँगलियों पर गिन रहे ॥

अब नहीं है निवाह हो पाता ।
 नेह करिये निहारिये हम को ॥
 क्या उबर अब नहीं सकेंगे हम ।
 हाथ देकर उवारिये हम को ॥

पास मेरे इधर उधर आगे ।
 है दुखों का पड़ा हुआ डेरा ॥
 है गई अब बुरी पकड़ पकड़ी ।
 आप आ हाथ लें पकड़ मेरा ॥

फिर रही है बुरी बला पीछे ।
 खोलता दुख विहंग है फिर पर ॥
 बेतरह फेर में पड़े हम हैं ।
 फेरते हाथ क्यों नहीं सिर पर ॥

चुभते चौपदे

वह रहे हैं विपत लहर में हम ।
 अब दया का दिखा किनारा दें ॥
 क्या कहूँ और—हूँ बहुत हारा ।
 प्रभु हमें हाथ का सहारा दें ॥

क्यों दिखाने में अँगूठा दीन को ।
 आपकी रुचि आज दिन यों है तुली ॥
 हैं तरसते एक मूठी अन्न को ।
 आप की मूठी नहीं अब भी खुली ॥

दें न हलवे छीन तो करवे न लें ।
 नाथ कब तक देखते जलवे रहें ॥
 कब तलक बलवे रहेंगे देस में ।
 कब तलक हम चाटते तलवे रहें ॥

सच्चे देवते

मान के ऊँचे महल में पा जिसे ।
 सिर उठाये जाति के बच्चे घुसे ॥
 आँख जिससे देस की ऊँची हुई ।
 क्यों न आँखों पर बिठायें हम उसे ॥

गागर में सागर

५

जो कि समझें कठोर राहों से ।
 टल गये तो किया मरद हो क्या ॥
 उन बिछे सिर धरों के पाँव तले ।
 जो न आखें बिछीं बिछीं तो क्या ॥

हो चुके देस पर निछावर जो ।
 स्वाद जो जाति प्यार का चख लें ॥
 धूल लें पाँव की लगा उन के ।
 चाहिये आँख पर उन्हें रख लें ॥

नित बहुत दौड़ धूप जी से कर ।
 जो गिरी जाति को उठा देवें ॥
 चाहिये पाँव चाह से उन का ।
 चूम लें आँख से लगा लेवें ॥

प्यार से पाँव चूम लेवेंगे ।
 धूल सिर पर ललक लगा लेंगे ॥
 आइये ऐ मिलाप के पुतले ।
 हम पलक पाँवड़े बिछा देंगे ॥

हाथ वे ही हाथ हैं जिस हाथ के ।
 चूमने की चाह रखते हों वड़े ॥
 पाँव वे ही पाँव हैं जिन के लिये ।
 पाँवड़े कितनी पलक के हों पड़े ॥

चुभते चौपदे

जाति की जान देख जोखों में ।
जो जसी लोग जान पर खेलें ॥
लालसा लाख बार होती है ।
हम पलक पर उन्हें ललक ले लें ॥

क्यों नहीं उन को बिठाये आँख पर ।
धूल पग की क्यों न आदर साथ लें ॥
जाति जिन के हाथ से ऊँचे उठी ।
लोग उन को क्यों न हाथोंहाथ लें ॥

पाँव जो हैं जाति के जीवन बने ।
क्यों न उन की धूल ले लेकर जियें ॥
गल रहा है पाप मल है धुल रहा ।
क्यों भला धो धो न हम तलवे पियें ॥

पाँव वह क्यों चाव से चूमें न हम ।
काठ उकटे छू जिसे फूलें फलें ॥
धूल लगते देखने अंधे लगे ।
लोग आँखें क्यों न तलवों से मलें ॥

तब कहाँ सच्ची लगन है लग सकी ।
प्यार में पग जो न पग देखे भले ॥
क्या बिछाये आँख तब बैठे रहे ।
आँख बिछ पाई न जब तलवों तले ॥

जाति के जीवन

साहसी

बीज को धूल में मिला कर भी ।
जो नहीं धूल में मिला देते ॥
ऊसरो में कमल खिला देना ।
वे हँसी खेल हैं समझ लेते ॥

धजियाँ उड़ते दहलते जो नहीं ।
सिर उतरते किस लिये वे सी करें ॥
तन नपाते जो सहम पाते नहीं ।
वे भला गरदन नपाते क्यों डरें ॥

पाजियों को गाल क्यों दें मारने ।
सामने दुख फिरकियाँ फिरती रहें ॥
जिस तरह हो चीर देंगे गाल हम ।
चिर गई तो डँगलियाँ चिरती रहें ॥

चुभते चौपदे

वह बने आस छोड़ बेचारा ।
पास जिस के रहा न चारा है ॥
हार हिम्मत न छोड़ देंगे हम ।
नहँ नहीं गिर गया हमारा है ॥

क्या करेगा भाग हिम्मत चाहिये ।
हाथ में हित कुंजियाँ क्या हैं नहीं ॥
जो लकीरें हैं लकीरें भाग की ।
कब न मूठी में हमारी वे रहीं ॥

है करमरेख मूठियों में ही ।
बेहतरी बाँह के सहारे है ॥
कर नहीं कौन काम हम सकते ।
क्या नहीं हाथ में हमारे है ॥

साहसी के हाथ में ही सिद्धि है ।
लोटता है लाभ पाँवों के तले ॥
है दिलेरी खेल बायें हाथ का ।
हैं खिलौने हाथ के सब हौसले ॥

जो रहे ताकते पराया मुँह ।
तो दुखों से न किस लिये जकड़ें ॥
क्यों न हों पाँव पर खड़े अपने ।
और का पाँव किस लिये पकड़ें ॥

जाति के जीवन

९

ठोकरें मार चूर चूर करें ।
 पथ अगर हो पहाड़ ने घेरा ॥
 क्यों नहीं वेडिगे भरें डग हम ।
 पाँव क्यों जाय डगमगा मेरा ॥

जम गये, छोड़ता जगह क्यों है ।
 क्यों नहीं गड़ पहाड़ लौं पाता ॥
 दूसरों के उखाड़ देने से ।
 पाँव क्यों है उखड़ उखड़ जाता ॥

काँपता वात वात में है जी ।
 फल बुरे हैं इसी लिये चखते ॥
 फूँक से आप उड़ न जावेंगे ।
 पाँव क्यों फूँक फूँक हैं रखते ॥

जी लगा यह पाठ हम पढ़ते रहें ।
 कट गये हैं बाल बढ़ने के लिये ॥
 बात यह चित से कभी उतरे नहीं ।
 हैं उतरते फूल चढ़ने के लिये ॥

चुभते चौपदे

सच्चे वीर

संकटों की तब करे परवाह क्या ।
 हाथ झंडा जब सुधारों का लिया ॥
 तब भला वह मूसलों को क्या गिने ।
 जब किसी ने ओखली में सिर दिया ॥

दूसरे को उबार लेते हैं ।
 एक दो वीर ही विपद में गिर ॥
 पर बहुत लोग पाक बनते हैं ।
 ठीकरा फोड़ दूसरों के सिर ॥

सामने पाकर विपद की आँधियाँ ।
 वीर मुखड़ा नेक कुम्हलाता नहीं ॥
 देख कर आती उमड़ती दुख-घटा ।
 आँख में आँसू उमड़ आता नहीं ॥

सब दिनों मुँह देख जीवट का जिये ।
 लात अब कायरपने की क्यों सहें ॥
 क्यों न बैरी को विपद में डाल दें ।
 हम भला क्यों डालते आँसू रहें ॥

वे कभी बात में नहीं आते ।
 लग गई है जिन्हें कि सच्ची धुन ॥
 वे भला आप सूख जाते क्या ।
 मुख न सूखा जवाब सूखा सुन ॥

जाति के जीवन

११

काल की परवाह बीरों को नहीं ।
 वह रहे उन को भले ही छूटता ॥
 काम छोड़ा छूटता छोड़े नहीं ।
 दूटता है दम रहे तो दूटता ॥

हमारे सूरमे

छोड़ कर लाड़ प्यार लड़ने को ।
 जो हमें बार बार ललकारें ॥
 तीर तदबीर हाथ में ले कर ।
 क्यों उन्हें तो न ताक कर मारें ॥

हम लड़ेंगे और लड़ते रहेंगे ।
 क्यों न वे जी जान से हम से लड़ें ॥
 धो न बैठेंगे हितों से हाथ हम ।
 हाथ धो कर क्यों न वे पीछे पड़ें ॥

हम डरेंगे कभी नहीं उन से ।
 पाप से जो नहीं डरे होंगे ॥
 हाथ उन के नहीं बँटायेंगे ।
 हाथ जिन के लहू भरे होंगे ॥

चुभते चौपदे

क्यों उमंगें जाँय दसगूनी न हो ।
चाव कैसे चित न चौगूना करे ॥
जब कि जी भर हम उभर पाते नहीं ।
किस तरह तब जी बिना उभरे भरे ॥

जान कितने लोग की बच जाय तो ।
जान जाना जान जाना है नहीं ॥
जाति के हित के लिये गँव आ गये ।
जी गँवाना जी गँवाना है नहीं ॥

मान सच्चा हाथ आने के लिये ।
हाथ की ही हथकड़ी, हैं हथकड़े ॥
जाति-हित बीड़ा उठा आगे बड़े ।
भाग है, जो पाँव में वेड़ी पड़े ॥

जम गया तो जमा रहे रन में ।
क्यों लहू से न रोम रोम सिंचे ॥
है खचाखच मची हुई तो क्या ।
खींच लें पाँव हम न खाल खिंचे ॥

जाति-हित बूटी रहेंगे खोजते ।
चोट खा, वे क्यों न झन्नाते रहें ॥
हम पहाड़ों में रहेंगे घूमते ।
पत्थरों से पाँव टकराते रहें ॥

जाति के जीवन

१३

जम गये काम कर दिखायेंगे ।
 कौन से काम हैं नहीं 'कस' के ॥
 जी गये भी खसक नहीं सकते ।
 क्यों खसक जाँय पाँव के खसके ॥

हम नहीं हैं फूल जो वे दें मसल ।
 हैं न ओले जो हवा लगते गलें ॥
 हैं न हलवे जाय जो कोई निगल ।
 हैं न चींटी जो हमें तलवे मलें ॥

आनवानवाले

बीसियों बार छान बीन करें ।
 पर चलें वे न और का मत ले ॥
 जी करे ढाह दें विपत हम पर ।
 पत उतारें न कान के पतले ॥

जो लगायें कहें लगी लिपटी ।
 वे कभी वन सके नहीं सच्चे ॥
 क्यों भला बात हम सुनें कच्ची ।
 हैं न बच्चे न कान के कच्चे ॥

चुभते चौपदे

देख मनमानी बहुत जी पक गया ।
 अब भला चुप किस तरह से हम रहें ॥
 बात लगती वेकहों को बेधड़क ।
 हम कहेंगे औ न क्यों मुँह पर कहें ॥

हम फिरेंगे न बात से अपनी ।
 आँख जो फिर गई तो फिरने दो ॥
 हम गिरेंगे कभी न मुँह के बल ।
 मुँह अगर गिर गया तो गिरने दो ॥

खींच ली जाय जीभ क्यों उन की ।
 गालियाँ जो कि जी जले ही दें ॥
 बंद होगा न आँख का आँसू ।
 आप मुँह वन्द कर भले ही दें ॥

सब समझ सोच तो सकेंगे ही ।
 आप सारे उपाय कर लेवें ॥
 बंद होगा न, देखना सुनना ।
 आप मुँह क्यों न वन्द कर देवें ॥

पढ़ गया जब कि देखना नीचा ।
 तब भला किस तरह न वह खलता ॥
 जब चलाये न बात चल पाई ।
 तब भला किस तरह न मुँह चलता ॥

हित-गुटके

१५

जो पड़े सिर पर, रहें सहते उसे ।
 पर न औरों के बुरे तेवर सहें ॥
 दिन बितायें चाब मूठी भर चना ।
 पर किसी की भी न मूठी में रहें ॥

तब खरा रह गया कहाँ सोना ।
 जब हुआ मैल दूर आँचें खा ॥
 क्यों न मुँह की बनी रहे लाली ।
 गाल क्यों लाल हो तमाचे खा ॥

हित-गुटके

याद

क्या रहे और हो गये अब क्या ।
 याद यह बार बार कहती है ॥
 सोच में रात बीत जाती है ।
 आँख छत से लगी ही रहती है ॥

चुभते चौपदे

हुन वरसता था, अमन था, चैन था ।
 था फला-फूला निराला राज भी ॥
 वह समौ हम हिन्दुओं के ओज का ।
 आँख में है घूम जाता आज भी ॥

वे हमारे अजीब धुनवाले ।
 सब तरह ठीक जो उतरते थे ॥
 आज जो हैं कमाल के पुतले ।
 कान उन के कभी कतरते थे ॥

जब रहे रात दिन हमारे वे ।
 पाँव जब धाक चूम जाती है ॥
 क्या रहे और तब रहे कैसे ।
 अब न वह बात याद आती है ॥

हैं पटकते कलप कलप उठते ।
 याद कर राज पाट खोना हम ॥
 होंठ को चाट चाट लेते हैं ।
 देख दिल का उचाट होना हम ॥

जो कि दमदार थे बड़े उन को ।
 धूल में था मिला दिया दम में ॥
 थे दिलावर कभी हमीं जग में ।
 थी बड़ी ही दिलावरी हम में ॥

हित-गुटके

१७

साँसतों का सगा सितम पुतला ।
 कब हमें मानता न यम सा था ॥
 थी दिलेरी बहुत बड़ी हम में ।
 कौन जग में दिलेर हम सा था ॥

ललक

बीत पाते नहीं दुखों के दिन ।
 कब तलक दुख सहें कुढ़ें काँखें ॥
 देखने के लिये सुखों के दिन ।
 है हमारी तरस रही आँखें ॥

सुख-झलक ही देख लेने के लिये ।
 आज दिन हैं रात दिन रहते खड़े ॥
 बात हम अपने ललक की क्या कहें ।
 डालते हैं नित पलक के पाँवड़े ॥

कचोट

क्या न हित-बेलि लहलही होगी ।
 क्या सकेगा न चैन चित में थम ॥
 हो सकेंगे न क्या भले दिन फल ।
 क्या सकेंगे न फूल फल अब हम ॥

चुभते चौपदे

साँसतें क्या इसी तरह होंगी ।
जायगा सुख न क्या कभी भोगा ॥
क्या दुखी दिन वदिन बनेंगे ही ।
क्या कुदिन अब सुदिन नहीं होगा ॥

क्या बचाये न बच सकेगा कुछ ।
क्या चला जायगा हमारा सब ॥
क्या गिरेंगे इसी तरह दिन दिन ।
क्या फिरेंगे न दिन हमारे अब ॥

कर लगातार भूल पर भूलें ।
क्या रहेंगे सदा बने भोले ॥
क्यों खेले खोखले बना कोई ।
क्या खुलेगी न आँख अब खोले ॥

क्या बुरे से बुरे दुखों को सह ।
एँड़ियाँ ही घिसा करेंगे हम ॥
क्या टलेंगे न पीसने वाले ।
क्या सदा ही पिसा करेंगे हम ॥

क्या से क्या

धूल में धाक मिल गई सारी ।
 रह गये रोव दाव के न पते ॥
 अब कहाँ दबदबा हमारा है ।
 आज हैं वात वात में दबते ॥

आज दिन धूल है वरसती वाँ ।
 हुन वरसता रहा जहाँ सब दिन ॥
 तन रतन से सजे रहे जिन के ।
 बेतरह आज वे गये तन बिन ॥

आज बेढंग बन गये हैं वे ।
 ढंग जिन में भरे हुए कुल थे ॥
 बाँध सकते नहीं कमर भी वे ।
 बाँधते जो समुद्र पर पुल थे ॥

जो रहे आसमान पर उड़ते ।
 आज उन के कतर गये हैं पर ॥
 सिर उठाना उन्हें पहाड़ हुआ ।
 जो उठाते पहाड़ उँगली पर ॥

चुभते चौपदे

हैं रहे डूब वे गड़हियों में ।
 बेतरह बार बार खा धोखा ॥
 सूखता था समुद्र देख जिन्हें ।
 था जिन्होंने समुद्र को सोखा ॥

जो सदा मारते रहे पाला ।
 वे पड़े टालटूल के पाले ॥
 आज हैं गाल मारते बैठे ।
 जंगलों के खँगालने वाले ॥

तप सहारे न क्या सके कर जो ।
 मन उन्हीं का मरा बहुत हारा ॥
 हैं लहू घूँट आज वे पीते ।
 पी गये थे समुद्र जो सारा ॥

सब तरह आज हार वे बैठे ।
 जो कभी थे न हारने वाले ॥
 आप हैं अब उबर नहीं पाते ।
 स्वर्ग के भी उबारने वाले ॥

पेड़ को जो उखाड़ लेते थे ।
 हैं न सकते उखाड़ वे मोथे ॥
 वे नहीं कूद फाँद कर पाते ।
 फाँद जाते समुद्र को जो थे ॥

हित-गुटके

२१

जो जगत - जाल तोड़ देते थे ।
 तोड़ सकते वही नहीं जाला ॥
 वे मथे मथ दही नहीं पाते ।
 था जिन्होंने समुद्र मथ डाला ॥

क्या थे क्या हो गये

भोर - तारे जो बने थे तेज खो ।
 आज वे हैं तेज उन का खो रहे ॥
 माँद उन की जोत जगती हो गई ।
 चाँद जैसे जगमगाते जो रहे ॥

पालने वाले नहीं अब वे रहे ।
 इस लिये अब हम पनप पलते नहीं ॥
 डालियाँ जिनकी फलों से थीं लदी ।
 पेड़ वे अब फूलते फलते नहीं ॥

धूल उन की है उड़ाई जा रही ।
 धूल में मिल धूल वे हैं फाँकते ॥
 सब जगत मुँह ताकता जिनका रहा ।
 आज वे हैं मुह पराया ताकते ॥

चोट पर है चोट चित्त को लग रही ।
 आज उन का मन बहुत ही है मरा ॥
 धूम जिन का धूम धामों की रही ।
 धाक से जिन की धसकती थी धरा ॥

जो बनाते ही बिगड़तों को रहे ।
 आप अब वे हैं बिगड़ते जा रहे ॥
 रख सके जो लोग मुँह लाली सदा ।
 आज हैं वे लोग मुँह की खा रहे ॥

जातियाँ मुँह जोह जिनका जी सकी ।
 इन दिनों हैं आग वे ही वो रहीं ॥
 जग न लेता साँस जिनके सामने ।
 आज उनकी साँसतें हैं हो रहीं ॥

फूल जिन पर था बरसता सब दिनों ।
 इन दिनों वे धूल से हैं भर रहे ॥
 राज पाकर राज जो करते रहे ।
 काम अब वे राज का हैं कर रहे ॥

मिल रही है न खाट टूटी भी ।
 चैन बेचैन बन न क्यों खोते ॥
 आज हैं फूट फूट रोते वे ।
 जो रहे फूल - सेज पर सोते ॥

हित-गुटके

२३

वन गये हैं औगुनों की खान वे ।
 गुन अनूठे हाथ से छन छन छिने ॥
 डालते थे जान जो बेजान में ।
 आज वे हैं जानवर जाते गिने ॥

हैं कलेजा पकड़ पकड़ लेते ।
 औ सका आँख का न आँसू थम ॥
 क्या कहें कुछ कहा नहीं जाता ।
 क्या रहे और हो गये क्या हम ॥

काम के कलाम

चेतावनी

पिस रहा है आज हिन्दूपन बहुत ।
 हिन्दुओं में हैं बुरी रुचियाँ जर्गी ॥
 ऐ सपूतो, तुम सपूती मत तजो ।
 हैं तुमारी ओर ही आँखें लगी ॥

हो गया है क्या, समझ पड़ता नहीं ।
 हिन्दुओं, ऐसी नहीं देखी कहीं ॥
 खोल कर के खोलने वाले थके ।
 है तुमारी आँख खुलती ही नहीं ॥

हिन्दुओं, जैसी तुमारी है बनी ।
 बेवसी ऐसी बनी किस की सगी ॥
 जागने पर जो लगी ही सी रही ।
 कब किसी की आँख ऐसी है लगी ॥

देख कर बेचारपन से तंग को ।
 आप तुम बेचारपन से मत घिरो ॥
 हो बचा सकते उन्हें तो लो बचा ।
 हिन्दुओं, आँखें बचाते मत फिरो ॥

छीजते ही जा रहे हो हिन्दुओं ।
 भाइयों को पाँव से अपने मसल ॥
 है उसी का मिल रहा बदला तुम्हें ।
 बेतरह आँखें गई हैं क्यों बदल ॥

हिन्दुओं, हाथ पाँव के होते ।
 जब कि है बेवसी तुम्हें भाती ॥
 तो भला क्यों न फेर में पड़ते ।
 दैव की आँख क्यों न फिर जाती ॥

काम के कलाम

२५

फल फले चैर फूट के जिस में ।
 दूध से बेलि वह गई सींची ॥
 देख कर नीचपन तुम्हारा यह ।
 हिन्दुओं, आँख हो गई नीची ॥

सब जगह बे-जागती को भी जगा ।
 आज दिन जो जोत जगती है नई ॥
 तब भला कैसे हमारे दिन फिरें ।
 जब हमारी दीठ उस से फिर गई ॥

है अगर जीना जियें जीवट दिखा ।
 या कि अब हम मौत कुत्ते की मरें ॥
 पिट गये जितना कि पिट सकते रहे ।
 अब भला रो पीट कर के क्या करें ॥

सूझता है न क्या है हो रहा ।
 और लम्बी तान कर हैं सो रहे ॥
 हाथ धोना सब सुखों से ही पड़ा ।
 क्या अजब जो आज हैं रो धो रहे ॥

थे समझते जाति-हित-रुचि-बेलिको ।
 कर सकेंगे हम हरी आँसू चुआ ॥
 वह पनपने भी अगर पाई नहीं ।
 कुछ न तो रोने कल्पने से हुआ ॥

जी लगा जाति के सुनो दुखड़े ।
 सच कहते हुए डिगो न डरो ॥
 एक क्या लाख जोड़वन्द लगे ।
 वन्द तुम कान मुँह कभी न करो ॥

दम अगर तोड़ना पड़ेहीगा ।
 किस लिये तो विचार को छोड़ें ॥
 क्यों बड़े ही हरामियों का सिर ।
 तोड़ते तोड़ते न दम तोड़ें ॥

घोंटते जो लोग हैं उस का गला ।
 क्यों नहीं उन का लहू हम गार लें ॥
 है हमारी जाति का दम घुट रहा ।
 हम भला दम किस तरह से मार लें ॥

धूल में मरदानगी अपनी मिला ।
 लात हिम्मत को लगा जीते मरें ॥
 है अगर हम में नकुल दम रह गया ।
 तो भरोसा और के दम का करें ॥

टूट जावे मगर न खुल पावे ।
 इस तरह से कमर कसें बाँधें ॥
 जाति का काम साधती बेला ।
 दम निकल जाय पर न दम साधें ॥

काम के कलाम

२७

छोड़ दें पेचपाच की आदत ।
 बीच का खींचतान कर दें कम ॥
 तोड़ कर औ मरोड़ कर वारें ।
 जाति का क्यों गला मरोड़ें हम ॥

है कसर कौन सी नहीं हम में ।
 है भला कौन इस तरह लुटता ॥
 जब हमीं घोट घोट देते हैं ।
 तब गला जाति का न क्यों घुटता ॥

जो उन्हें गोद में नहीं लेते ।
 जो गले से नहीं लगाते हो ॥
 वेवसों पर छुरी चला कर के ।
 क्यों गले पर छुरी चलाते हो ॥

जो निवाहो नेह के नाते न तुम ।
 जो न रोटी वाँट कर खाओ जुरी ॥
 तो छुरी वेढंग आपस में चला ।
 मत गले पर जाति के फेरो छुरी ॥

जो पिलाते बन सके तो दो पिला ।
 वह निराला जल कि जिस से हो भला ॥
 प्यास सुख की बेतरह हैं बढ़ गई ।
 आस का है सूखता जाता गला ॥

२८

चुभते चौपदे

तब भला किस तरह वसेंगे हम ।
 जब कि होवे न देस ही वसता ॥
 तब हमारा गला फँसेगा ही ।
 जब कि है जाति का गला फँसता ॥

मौत का जो पयाम लाती है ।
 क्या न है आ रही वही खाँसी ॥
 जब गले फँस गये कुफ़दे में ।
 क्या गले में न तब लगी फाँसी ॥

चाहिये कुछ दवंगपन रखना ।
 दब बहुत दाव में न आयें हम ॥
 बेसबब दबदबा गँवा अपना ।
 जाति का क्यों गला दबायें हम ॥

हैं बुरे फंदे बहुत फैले हुए ।
 जाल कितने बिछ गये हैं बरमला ॥
 बेतरह तुम आप भी फँस जावगे ।
 जाति का हो क्यों फँसा देते गला ॥

वात है यह बहुत बड़े दुख की ।
 हम अगर बेतरह कभी बढ़ दें ॥
 कूढ़पन वात वात में दिखला ।
 मूढ़पन जाति के गले मढ़ दें ॥

काम के कलाम

२९

सोच सामान अब करो सुख का ।
 दुख बहुत दिन तलक रहे चिमटे ॥
 गा चलो गीत जाति - हित के अब ।
 गा चुके कम न दादरे खेमटे ॥

फिर भला किस तरह हमारी रुचि ।
 देश - हित राग रंग में रँगती ॥
 सावनी है सुहावनी होती ।
 लावनी है लुभावनी लगती ॥

जाति - हित के बड़े अनूठे पद ।
 हम बड़ी ही उमंग से गावें ॥
 अब बहुत ही बुरी ठसकवाली ।
 ठुमरियों की न ठोकरें खावें ॥

क्यों जगाये भी नहीं हो जागते ।
 आज दिन सारा जगत है जग गया ॥
 लग से ही जाति-हित गाड़ी खिंचे ।
 लग गया कंधा बला से लग गया ॥

क्यों कसकती नहीं कसक जी की ।
 क्यों खली आज भी न कोर कसर ॥
 है बुरी चाट लग गई तो क्या ।
 अब रहें नाचते न चुटकी पर ॥

चुभते चौपदे

चूकते ही चूकते तो सब गया ।
 चूक कर खोना न अब घर चाहिये ॥
 नटखटों की चाट, जी की चोट को ।
 क्या उड़ाना चुटकियों पर चाहिये

जाति का काम हम किये जावें ।
 क्यों लहू से न बार बार सिंचें ॥
 विन गये बाल बाल भी न हटें ।
 खिंच गये खाल भी न हाथ खिंचें ॥

हो सका क्या न हौसला बाँधे ।
 जंग गये, कौन सा न भाग जगा ॥
 कस कमर कौन काम कर न सके ।
 लग गये लाग क्या न हाथ लगा ॥

जाति - हित क्या रियाँ लगे हाथों ।
 क्यों नहीं आप सींच लेते हैं ॥
 चाहिये इस तरह न खिंच जाना ।
 किस लिये हाथ खींच लेते हैं ॥

जाँय कीलें सकल नहीं में गड़ ।
 जाति - हित हौसले न हट पावें ॥
 हाथ लट जाय, शल हथेली हो ।
 उँगलियाँ पोर पोर कट जावें ॥

काम के कलाम

३१

कौर मुँह का क्यों न तब छिन जायगा ।
 जाँयगी पच क्यों न प्यारी छातियाँ ॥
 पेट कटता देख जब रो पीट कर ।
 लोग पीटा ही करेंगे छातियाँ ॥

कढ़ रही हैं तो कढ़ें चिनगारियाँ ।
 अब न आँखें नीर बरसाती रहें ॥
 कूटते हैं तो बड़ों को कूट दें ।
 कट मरें, क्यों कूटते छाती रहें ॥

हौसले और दबदबे वाला ।
 क्या नहीं है दबंग बन पाता ॥
 हम किसी की न दाव में आयें ।
 दिल दबे कौन दब नहीं जाता ॥

आज दिन तो दौड़ ही की होड़ है ।
 फिर हमें है दौड़ने में कौन डर ॥
 क्या निगाहें भी नहीं हैं दौड़तीं ।
 दौड़ता है दिल न दौड़ाये अगर ? ॥

माल निगला क्यों उगलवा लें न हम ।
 है हमें कुछ कम न टोटा हो रहा ॥
 जो निकल पावे निकालें पेट से ।
 दिन ब दिन है पेट मोटा हो रहा ॥

३२

चुभते चौपदे

कौड़ियाँ पैसे हमारे क्यों लुटें ।
 वे रहें कैसे किसी की टेंट में ॥
 लें उगलवा माल पकड़ें फेंट हम ।
 पेट में है तो रहे क्यों पेट में ॥

दुख न भोगें उखाड़ दें उस को ।
 है अगर जम गया हिला डालें ॥
 लाभ क्या टालटूल से होगा ।
 जो सके टाल पाँव को टालें ॥

नाक रगड़े मिटे नहीं रगड़े ।
 माथ क्या पाँव पर रगड़ करते ॥
 दो रगड़ जो रगड़ सको खल को ।
 पाँव क्या हो रगड़ रगड़ मरते ॥

सजीवन जड़ी

दुख बने वह अजब नशा जिस में ।
 मौत का रूप रंग ही भावे ॥
 जाति - हित के लिये मरें हँसते ।
 आह निकले न, दम निकल जावे ॥

काम के कलाम

३३

काम लेते जो विचारों से रहे ।
 हाथ वे वेसमझियों के कव विके ॥
 जो छिंके जी की कचाई से नहीं ।
 छेंकने से छींक के वे कव छिंके ॥

हौसलेवाले हिचिकते ही नहीं ।
 राह चाहे ठीक या वेठीक हो ॥
 हो सगुन या काम असगुन से पड़े ।
 दाहिने हो या कि बायें छींक हो ॥

पड़ गये हो उधेड़वुन में क्यों ।
 तुम गये बार बार वीछे हो ॥
 कव सके वीर पाँव पीछे रख ।
 सैकड़ों छींक क्यों न पीछे हो ॥

करतवी की देख नाकावंदियाँ ।
 छक गई सी है निकल पाती नहीं ॥
 छींकनेवाले करें तो क्या करें ।
 छींकते हैं छींक ही आती नहीं ॥

दूर अंधाधुंध जिस से हो सके ।
 बाँध कर के धुन वही धंधा करें ॥
 जाति की औ देस की सेवा सदा ।
 लोग कंधे से मिला कंधा करें ॥

चुभते चौपदे

बीज जब थे बिगाड़ का बोते ।
 किस तरह प्यार बेलि उग पाती ॥
 जब कि हम बात बात में बिगड़े ।
 बात कैसे न तब बिगाड़ जाती ॥

जब मनाने ही हमें आता नहीं ।
 तब सकेंगे किस तरह से हम मना ॥
 कब भला बनती किसी से है बने ।
 बात बनती ही नहीं बातें बना ॥

मान, जिनका मान रखकर के मिला ।
 मत बिगाड़ो मान का उन के घुरा ॥
 है बिना हारे हारना आप को ।
 है बड़ों की बात दोहराना बुरा ॥

तब बखेड़े किस तरह उठते नहीं ।
 जब बखेड़ों का रहा जी में न डर ॥
 बात तब कैसे भला बढ़ती नहीं ।
 बात बढ़ बढ़ कर, रहे करते अगर ॥

क्यों नहीं तब जायगा कोई उखड़ ।
 बात हम उखड़ी हुई जब कहेंगे ॥
 रिस लहर कैसे न तब बढ़ जायगी ।
 बात को जब हम बढ़ाते रहेंगे ॥

काम के कलाम

३५

है बहुत वाजिव बहुत ही ठीक है ।
 वाँट में वेढंग के जो पड़ गई ॥
 तब भला वह किस तरह जी में जमे ।
 जब बताई बात ही बेजड़ गई ॥

तो उछल कूद क्या रहे करते ।
 जो किया छोड़ छल न देस भला ॥
 सब बला टाल देस के सिर की ।
 जो कलेजा न बलियों उछला ॥

जाति - हित की अगर लगी लौ है ।
 तो करें काम बेवहा हाथों ॥
 हौसला हो छलक रहा दिल में ।
 हो कलेजा उछल रहा हाथों ॥

लोक - हित में कब लगे जी जान से ।
 कब लगा प्यारा न परहित से टका ॥
 देस सुख मुख देख कमलों सा खिला ।
 कब कलेजा है उछल वाँसों सका ॥

हो भला, वह हो भलाई से भरा ।
 भाव जो जी में जगाने से जगे ॥
 जातिहित जनहित जगतहित में उमग ।
 जी लगायें जो लगाने से लगे ॥

चुभते चौपदे

क्यों सितम पर सितम न हो हम पर ।
 क्यों बला पर बला न आ जाये ॥
 घेर घबराहटें न लें हम को ।
 जी हमारा न नेक घबराये ॥

क्या नहीं हाथ पाँव हम रखते ।
 एक वेपीर क्यों हमें पीसे ॥
 फिर हमें जो लगी लगी तो क्या ।
 आज भी जो लगी नहीं जी से ॥

जी ठिकाने है अगर रहता नहीं ।
 चुटकियों पर तो मुहिम होगी न सर ॥
 तो उड़ेंगे फूँक से दुखड़े नहीं ।
 जी हमारा है उड़ा रहता अगर ॥

सूरमा साहस दिखा कर सौगुना ।
 कौन सा पाला नहीं है मारता ॥
 तो हरायें भूलकर उस को न हम ।
 जी हराये ही अगर है हारता ॥

चोचलों की चली नहीं सब दिन ।
 काम का ही जहान है खोजी ॥
 अब नहीं लाड़ प्यार के दिन हैं ।
 जी लड़ायें लड़ा सकें जो जी ॥

काम के कलाम

३७

है अगर आगे निकलना चाहता ।
तो किसे पीछे नहीं है छोड़ता ॥
देख लेवें लोग दौड़ा कर उसे ।
दौड़ने पर जी बहुत है दौड़ता ॥

धीर होते कभी अधीर नहीं ।
क्यों न सिर पर विपत्त वितान तने ॥
हाथ का आँवला न है अवसर ।
बावला मन उतावला न बने ॥

काम से मोड़ें न मुँह, तोड़ें न दम ।
चाम तन का क्यों न छन छन पर छिले ॥
हिल गये दिल भी न, हिलना चाहिये ।
जाँय हिल क्यों पेट का पानी हिले ॥

जो गिरें टूट टूट तन रोयें ।
जग उठें और जाति जय बोलें ॥
वन अमर देस - हित रहें करते ।
मर मिटें पर कमर न हम खोलें ॥

फूट घर में न फैलने पावे ।
फूट कर भी न आँख फूट सके ॥
टूट में जाय पड़ नहीं कोई ।
टूट कर भी कमर न टूट सके ॥

चुभते चौपदे

सब दिनों दुख पीसता जिन को रहा ।
 मुँह पराया ताककर ही वे पिसे ॥
 वह कमाई कर कभी हारा नहीं ।
 जाँघ का अपनी सहारा है जिसे ॥

वह जिसे सामने सदा लाई ।
 है नहीं अंत उस समाई का ॥
 नाम कर काम का बना देना ।
 काम है जाँघ की कमाई का ॥

जी लगा काम औ कमाई कर ।
 हो गये कामयाब माहिर सब ॥
 हैं जवाहिर न जौहरी के घर ।
 जाँघ में हैं भरे जवाहिर सब ॥

छल कपट के हाथ से छूटे रहें ।
 पाँव मेरे तो कहीं कैसे छिकें ॥
 कर न दें तलवेलियाँ वेकार तो ।
 धार पर तलवार की तलवे टिकें ॥

बूते की बात

चाहिये आँखें खुली रखना सदा ।
 दुख सकेंगे टल नहीं आँखें ढके ॥
 सूख जाते हैं विपद को देख जब ।
 किस तरह से सूख तब आँसू सके ॥

जाँयगे पेच पाच पड़ ढीले ।
 छेद देगा कुदंग बरछी ले ॥
 खोज कर के नये नये हीले ।
 आँख से आँख लड़ भले ही ले ॥

देख कर के ही किसी ने क्या किया ।
 साँसतें सह जातियाँ कितनी मुई ॥
 तब हुआ क्या बाहरी आँखें बचे ।
 जब कि आँखें भीतरी अंधी हुई ॥

हो बुरा उन कचाइयों का जो ।
 पत उतारे बिना नहीं मुड़ती ॥
 जब हवा आप हो गये हम तो ।
 क्यों न मुँह पर हवाइयाँ उड़ती ॥

आ रही हैं जम्हाइयाँ यों क्यों ।
 काम क्यों वीर की तरह न करें ॥
 हैं उबरते अगर उबर लेवें ।
 साँस हम ऊब ऊब कर न भरें ॥

चुभते चौपदे

और बातें भूल दें तो भूल दें ।
 चोट जी की किस तरह है भूलती ॥
 हैं वरसते फूल साँसत में नहीं ।
 फिर किसी की साँस क्यों है फूलती ॥

मर मिटें पर काम से मोड़ें न मुँह ।
 आ बने जी पर मगर सच्ची कहें ॥
 साँसतें सह छोड़ दें साहस नहीं ।
 साँस रहते तक उबरते हम रहें ॥

हो भला जिस से वही जी से करें ।
 पीटते हैं हम पुरानी लीक क्या ॥
 साँस क्यों लें जाति-हित करते चलें ।
 साँस आई या न आई ठीक क्या ॥

लोक-हित के लिये बड़े जब तो ।
 पाँव पीछे कभी न टल जावे ॥
 हम भली राह से निकल न भगें ।
 क्यों नहीं साँस ही निकल जावे ॥

सब तरह से न जाँय जुट जब तक ।
 जीत तब तक न हाथ आती है ॥
 आस कैसे न टूट जाती तब ।
 साँस जब टूट टूट जाती है ॥

काम के कलाम

४१

खुल कहें और बार बार कहें ।
 बात वाजिव सदा कही जावे ॥
 वन्द तब तक न मुँह करें अपना ।
 साँस जब तक न वन्द हो जावे ॥

जब निकल ऐंठ ही गई सारी ।
 तब भला मूँछ किस लिये ऐंठें ॥
 बैठती आन वान से तो क्यों ।
 बात बैठी अगर चपत बैठे ॥

बाँह के बल को समझ को बूझ को ।
 दूसरों ने तो बँटाया है नहीं ॥
 धन किसी का देख काटें होठ क्यों ।
 हाथ तो हम ने कटाया है नहीं ॥

कौड़ियों पर किस लिये हम दाँत दें ।
 है हमारा भाग तो फूटा नहीं ॥
 क्या हुआ जो कुछ हमें टोटा हुआ ।
 है हमारा हाथ तो टूटा नहीं ॥

जो सदा हैं बखेरते काँटे ।
 दे सके वे न फूल के दोने ॥
 क्यों भला काम लें न ढाढ़स से ।
 क्यों लों ढाढ़ मार कर रोने ॥

चुभते चौपदे

हौसलों के बने रहें पुतले ।
 हार हिम्मत कभी न हम हारें ॥
 काम मरदानगी दिखा सार्धे ।
 मार मैदान लें, न मन मारें ॥

भेद दिल का उन्हें नहीं मिलता ।
 हैं नहीं जो टटोल दिल पाते ॥
 पेट की बात जानना है तो ।
 पेट में पैठ क्यों नहीं जाते ॥

सूझ वूझ

उलझनों को बड़े बखेड़ों को ।
 सैकड़ों टालटूल कर टालें ॥
 बात जो भेद डाल दे उस को ।
 जो सकें डाल पेट में डालें ॥

तो बखेड़े करे बहुत से क्यों ।
 जो कहे बात, बात हो पूरी ॥
 काम हो कान के उखेड़े जो ।
 तो घुसेड़े न पेट में छूरी ॥

काम के कलाम

४३

तो न तकरार के लिये ललकें ।
 जो बला प्यार से टले टाले ॥
 जो चले काम पेट में पैठे ।
 तो न तलवार पेट में डाले ॥

दाँत तो तोड़ किस लिये देवें ।
 जो दवायें न दुख रही दाढ़ें ॥
 काढ़ काँटा न जो सकें दिल का ।
 तो किसी की न आँख हम काढ़ें ॥

भागने में अगर भलाई है ।
 क्यों भला जी न छोड़ कर भागूँ ॥
 माँगने से अगर मिले हम को ।
 क्यों न जी की अमान तो माँगूँ ॥

तो चलें चाल किस लिये गहरी ।
 बात देवें सँभाल जो लटके ॥
 तो पटकने चलें न सिर अपना ।
 काम चल जाय पाँव जो पटके ॥

आप अपने लिये बला न बनें ।
 जो न सिर पर पड़ी बला टालें ॥
 लाग से लोग जल रहे हैं तो ।
 पाँव अपना न आग में डालें ॥

चुभते चौपदे

पते की बातें

क्यों जम्हाई आ रही है वेतरह ।
 इस तरह से आँख क्यों है झप रही ॥
 देख लो सब ओर क्या है हो रहा ।
 बात सुन लो, आँख खोलो तो सही ॥

जाति को है अगर जिला रखना ।
 तो न मीठी को मान लें खट्टी ॥
 भेद का बाँध बाँधती वेला ।
 आँख पर बाँध लें न हम पट्टी ॥

जोत में आइये जतन करिये ।
 जागिये हो रहा सवेरा है ॥
 बन गये हैं इसी लिये अंधे ।
 आँख के सामने अँधेरा है ॥

हैं बड़े ही कपूत कायर हम ।
 जो बुरी तेवरियाँ हमें न खलें ॥
 ठोकरें देख जाति को खाते ।
 ठीकरी आँख पर अगर रख लें ॥

तो बला यों न बेलती पापड़ ।
 पाँव जाता न यों दुखों का जम ॥
 तो न खुल खेलती मुसीबत यों ।
 जो खुला आँख कान रखते हम ॥

काम के कलाम

४५

देख कर भी न देख जो पावें ।
 वे सजग और ढंग से हो लें ॥
 खुल सकें या न खुल सकें आँखें ।
 क्या खुली बात को भला खोलें ॥

सार को प्यार जो नहीं करते ।
 क्यों न रुचतीं उन्हें घुनी बातें ॥
 वे गुनी की गुनी सुनें कैसे ।
 जब सुनी हैं बनी चुनी बातें ॥

छेदने बेधने वहँकने से ।
 काम लेवें न मुँह अगर खोलें ॥
 जाति को है सँभाल लेना तो ।
 जीभ को हम सँभाल कर बोलें ॥

है घड़ा जो नहीं भरा पूरा ।
 क्यों न तो बार बार वह छलके ॥
 जाति-हित का सवाल कोई भी ।
 कर सके हल न पेट के हलके ॥

सुन सके बात हित भरी वे ही ।
 है न जो लोग कान के बहरे ॥
 क्यों कहें वे न पेट की बातें ।
 हैं न जो लोग पेट के गहरे ॥

चुभते चौपदे

हम निबल भूल पर बहुत विगड़े ।
 पर सबल के सितम हुए न जगे ॥
 लग गये पाँव क्यों गये जल भुन ।
 लग गई क्यों न आग लात लगे ॥

सुधार की बातें

तब भला क्या सुधार सकेंगे हम ।
 जब कि सुनते सुधार नाम जले ॥
 देखने के समय कसर अपनी ।
 छा गया जब अँधेरा आँख तले ॥

अनसुनी कर सुधार की बातें ।
 कूढ़ कैसे भला कहलवा लें ॥
 खोट रह जायगी उसे न सुने ।
 कान का खोट हम निकलवा लें ॥

जो जियें जाति को निहार जियें ।
 जो मरें जाति को उवार मरें ॥
 हैं यही तो सुधार की बातें ।
 कान क्यों बार बार बन्द करे ॥

काम के कलाम

४७

पार हो नाव दूवती जिस से ।
जब नहीं व्योत वे बता देते ॥
तब सुने नाम ही सुधारों का ।
लोग क्यों जीभ हैं दवा लेते ॥

हर तरह की बिगाड़ की बातें ।
हैं दिलों में सुधार बन पैठी ॥
सब घरों में खड़े बखेड़े हैं ।
फूट है पाँव तोड़ कर बैठी ॥

भाग

हैं पड़े भूल के भुलावों में ।
कब भरम ने भरम गँवा न ठगा ॥
क्या कहें हम अभाग की बातें ।
आज भी भाग भूत भय न भगा ॥

बिन उठाये न जायगा मुँह में ।
सामने अन्न जो परोसा है ॥
है भरी भूल चूक रग रग में ।
भाग का ही अगर भरोसा है ॥

चुभते चौपदे

जब बने तो बने गये बीते ।
 काहिली हो सकी न जौ भर कम ॥
 भाग कैसे अभाग तब पावे ।
 जब रहे भाग के भरोसे हम ॥

पा सके जो जहान में सब कुछ ।
 क्या न थे वे उपाय कर करते ॥
 हैं उमगते उमंग में भर जो ।
 दम रहे भाग का न वे भरते ॥

पाँव पर अपने खड़े जो हो सके ।
 ताक पर-मुख वे सभी सहते नहीं ॥
 बौह के बल का भरोसा है जिन्हें ।
 वे भरोसे भाग के रहते नहीं ॥

वीर हैं तदवीर से कब चूकते ।
 करतबी करतब दिखाते कब नहीं ॥
 भाग वाले हैं जगाते भाग को ।
 भाग की चोटें अभागों ने सही ॥

क्यों न रहती सदा फटी हालत ।
 पास सुख किस तरह फटक पाता ॥
 करतवों से फटे रहे जब हम ।
 भाग कैसे न फूट तब जाता ॥

काम के कलाम

४९

है नहीं जब लग जी से लग सकी ।
 लाभ तो होगा नहीं मुँह के तके ॥
 जब जगाने से नहीं जीवट जगी ।
 भाग कोई जांग तब कैसे सके ॥

देख करतूत की कमर टूटी ।
 बेहतरी फूट फूट कर ोई ॥
 जब न हित आँख खुल सकी खोले ।
 किस तरह भाग खुल सके कोई ॥

हम अगर हाथ पाँव डाल सके ।
 तब कुदिन पीस क्यों नहीं पाता ॥
 फट पड़ा जब अभाग का पर्वत ।
 भाग कैसे न फूट तब जाता ॥

मेल जोल

तो कहेंगे मिलाप परदे में ।
 है बुरी मौत की हुई संगत ॥
 रंग बदरंग कर हमारा दे ।
 जो किसी मेल जोल की रंगत ॥

चुभते चौपदे

लाख उनको रहें मिलाते हम ।
 हैं न वेमेल मन मिले रहते ॥
 है मुलम्मा किया हुआ जिस पर ।
 मेल उस मेल को नहीं कहते ॥

प्यार कहला कर किसी का प्यार क्यों ।
 काम हित जड़ के लिये दे तेल का ॥
 जो हमें वेमोल करता ही रहे ।
 कुछ नहीं है मोल ऐसे मेल का ॥

मिल गये पर चाहिये फटना नहीं ।
 तो परस्पर हों निछावर जो हिलें ॥
 कुछ न फल है दूध काँजी सा मिले ।
 जो मिलें तो दूध जल जैसा मिलें ॥

एक रंगत में न रँग पाई अगर ।
 साथ दो कलियाँ खिलीं, तो क्या खिलीं ॥
 जब मिलाने से नहीं मिल मन सका ।
 तब मिलीं दो जातियाँ तो क्या मिलीं ॥

वह न खेला जाय जिस में हो कपट ।
 क्यों न कितना ही निराला खेल हो ॥
 कल्ह मिलते आज मिट्टी में मिले ।
 जो न मालामाल हित से मेल हो ॥

काम के कलाम

५१

तात जल जो मिलन-लता का है ।
 और है जो कि हित-कमल पाला ॥
 मेल उस मेल को कहें कैसे ।
 है न जो प्यार-वेलि का थाला ॥

हाथ धो बैठें धरम से किस लिये ।
 मुँह हमारे क्यों सहम करके सिलें ॥
 ला मुसीबत माल पर पामाल हो ।
 धूल में क्यों मेल के नाते मिलें ॥

क्यों मलामत हम करें उस की नहीं ।
 मेल कर वेमेल जो होवे न मन ॥
 जो हमें मेली दिये जैसा मिले ।
 हो फतिंगे के मिलन सा जो मिलन ॥

धूल में जाय मिल मिलन वह जो ।
 मसलहत का महुँग मसाला हो ॥
 प्यार जो प्यार मतलबों का हो ।
 मेल जो मोल जोल वाला हो ॥

है भला मेल मेल वालों का ।
 जल गया बल गया चला बल क्या ॥
 एक वेमेल बेदहल लौ से ।
 मेल कर तेल को मिला फल क्या ॥

चुभते चौपदे

है बुरा बरवादियों का है सगा ।
 वैर जो हो प्रीति-पागों में पगा ॥
 प्यार-परदे में परायापन छिपा ।
 मैल जी का मैल रंगत में रँगा ॥

मिल, न उसको क्यों मुसीबत की कहें ।
 जो मिलन लेने न देवे कल हमें ॥
 बेतरह जो मुँह मुरौअत का मले ।
 दे गिरा जो मैल मुँह के बल हमें ॥

किस तरह से हम मिलन उसको कहें ।
 जो कि दो बेमेल मन का खेल हो ॥
 क्यों न वह होगा मलालों से भरा ।
 मामलों के ही लिये जो मैल हो ॥

मतलबों की मलाल की जिस पर ।
 है जमी एक एक मोटी तह ॥
 हम उसे कह मिलन नहीं सकते ।
 है न वह मैल है मिलाप न वह ॥

काम के कलाम

५३

सबल निबल

जब न संगत हुई बराबर की ।
 तब भला कब बराबरी न लकी ॥
 साथ सूरज हुए चमकता क्या ।
 चाँद की रह चमक दमक न सकी ॥

जो कड़ाई मिल सकी पूरी नहीं ।
 क्यों न चन्दन की तरह घिस जाँयगे ॥
 आप हैं संगीन वैसे हम न तो ।
 संग कर के संग का पिस जाँयगे ॥

कर सबल संग कब निबल निबहा ।
 कब सितम के उसे रहे न गिले ॥
 भेड़ियों से पट्टी न भेड़ों की ।
 बाघ बकरे हिले मिले न मिले ॥

किस तरह उस की न छिन जाती कला ।
 कब सबल लाये न निबलों पर बला ॥
 क्यों न जाती धूप में मिल चाँदनी ।
 चाँद सूरज साथ क्या करने चला ॥

जब निबल हो बने सबल संगी ।
 तब पलटते न किस तरह तखते ॥
 तो चले क्यों बराबरी करने ।
 बल बराबर अगर नहीं रखते ॥

चुभते चौपदे

घट गये, मान घट सके कैसे ।
 बाँट में बाट जब समान पड़े ॥
 तौल में कम कभी नहीं होंगे ।
 दो बराबर तुले हुए पलड़े ॥

पेड़ देखे गये नहीं पिसते ।
 जब पिसी तब पिसी नरम पत्ती ॥
 लौ दमकती रही दमक दिखला ।
 बल गया तेल जल गई वत्ती ॥

चाल चल चल निगल निगल उन को ।
 हैं बड़ी मछलियाँ बनीं मोटी ॥
 सौ तरह से छिपीं लुकीं उछलीं ।
 छूट पाईं न मछलियाँ छोटीं ॥

विलियों से चली न चूहों की ।
 छिपकली से सके न कीड़े पल ॥
 कब निबल पर बला नहीं आती ।
 है बली कब नहीं दिखाता बल ॥

धूप जितनी चाहिये उतनी न पा ।
 निज हरापन छोड़ हरिआते नहीं ॥
 उग रहे पौधे पवन अपनी छिने ।
 पास पेड़ों के पनप पाते नहीं ॥

काम के कलाम

५५

हैं न काँटों से छिदी कव पत्तियाँ ।
 कव लता को लू लपट खलती नहीं ॥
 मालिनों से कल न कलियों को मिली ।
 मालियों से फूल की चलती नहीं ॥

पत्थरों को नहीं हिला पाती ।
 पत्तियाँ तोड़ तोड़ है लेती ॥
 है न पाती हवा पहाड़ों से ।
 पेड़ को है पटक पटक देती ॥

है हवा खेलती हिलोरों से ।
 बुलबुले के लिये बलाती है ॥
 फूल को चूम चूम लेती है ।
 ओस को धूल में मिलाती है ॥

मारता कौन मारतों को है ।
 पिट गये कव नहीं गये बीते ॥
 हैं हरिन ही चपेट में आते ।
 बाघ पर दूटते नहीं चीते ॥

संगदिल से मिला नरम दिल क्या ।
 प्रेम के काम का न है कीना ॥
 संग दूटा न संग से टकरा ।
 हो गया चूर चूर आईना ॥

सजीवन बूटी

दिल के फफोले

पौ फटी है निकल रहा सूरज ।
हैं सभी लोग ढंग में ढलते ॥
देख करके मलाल होता है ।
आप हैं आँख ही अभी मलते ॥

लड़ पड़े पोत के लिये सग से ।
दूसरे लूट ले चले मोती ॥
एक क्या लाख वार देखे भी ।
आँख इस की हमें नहीं होती ॥

दिन गये सिंह मार लेने के ।
हैं भला कौन मार मन पाता ॥
मारते हैं जमा पराई अब ।
हैं हमें आँख मारना आता ॥

सजीवन वूटी

५७

साँसतें देख देख अपनों की ।
 चोट जी ने न भूल कर खाई ॥
 डूबता देख जाति का वेड़ा ।
 कब कभी आँख डबडवा आई ॥

दिन ब दिन हम घट रहे हैं तो घटें ।
 लुट रही हैं तो लुटें पौधें नई ॥
 कुछ न चारा है विचारी क्या करे ।
 जाति की है आँख ही चरने गई ॥

क्या कहें किस से कहें जायें कहाँ ।
 हैं विगड़ते कुछ भी बन आई नहीं ॥
 दौड़ में हम हैं बहुत पीछे पड़े ।
 पर किसी ने आँख दौड़ाई नहीं ॥

ठोंक कर के या कि दे दे थपकियाँ ।
 और भी दें नौनिहालों को सुला ॥
 खुल रहा है दिन ब दिन परदा मगर ।
 आँख का परदा नहीं अब भी खुला ॥

रंग विगड़ा कम न, बेसमझी मगर ।
 रंग में अपने सदा भूली रही ॥
 हैं हमीं कुछ इस तरह के सिर-फिरे ।
 आँख में सरसों सदा फूली रही ॥

चुभते चौपदे

जिन दिनों लू से लपट से धूप की ।
 फूल पत्ता है झुलसता जा रहा ॥
 आँख में ही कुछ कसर है, उन दिनों ।
 आँख में टेसू अगर फूला रहा ॥

फिर नहीं तो कलंक के धब्बे ।
 जाति क्यों जी लगा नहीं धोती ॥
 वह भला देख कुछ सके कैसे ।
 आँख ही है जिसे नहीं होती ॥

तुल गई ढील लील लेने को ।
 सूझ तब भी सबील पर न तुली ॥
 बँध गये, और हैं बँधे जाते ।
 पर बँधी दीठ आज भी न खुली ॥

तो बुरी दीठ किस तरह लगती ।
 किस लिये आग जाति में बोती ॥
 जो किसी देव-दीठ वाले की ।
 दीठ से दीठ जुड़ गई होती ॥

दुख पड़े पर ठीक वह सँभली नहीं ।
 राह उस ने कब सजग होकर गही ॥
 चूक अपनी कब समय पर देख ली ।
 दीठ सब दिन चूकती ही तो रही ॥

सजीवन बूटी

५९

अब न धन है न मान ही वह है ।
 और क्या क्या कहाँ कहाँ खोवें ॥
 लाख में एक लाख पड़ा न हितू ।
 हम न कैसे विलख विलख रोवें ॥

पाट सकते एक नाली भी नहीं ।
 रीस उन की जो नदी हैं पाटते ॥
 काटते हैं होंठ उन को देख कर ।
 कान उन का क्या भला हम काटते ॥

जाति का ढाढ़ मार कर रोना ।
 देस पर है विपत्तियाँ ढाता ॥
 सुन उसे कान के फटे परदे ।
 कान अब तो दिया नहीं जाता ॥

हैं हमारे न कारनामे कम ।
 फूट के बीज बेतरह बोये ॥
 जाति को भेज कर रसातल में ।
 कान में तेल डाल कर सोये ॥

कुल अजब हाल है बतायें क्या ।
 खुल न आँखें सर्कीं न उमगा मन ॥
 आ हरापन सका न चेहरे पर ।
 जा सका कान का न बहरापन ॥

६०

चुभते चौपदे

दुख पड़े घुल गया वदन सारा ।
जाति में वह रहा जमाल कहाँ ॥
है नहीं वह हरा भरा चेहरा ।
अब रहा लाल लाल गाल कहाँ ॥

एक है बातें बनाने में फँसा ।
एक है वेढंग मुँझलाया हुआ ॥
हैं कहाँ वे आप कुम्हला जाँय जो ।
जाति का मुँह देख कुम्हलाया हुआ ॥

एक क्या लाख बार जान पड़ा ।
हैं न हम से जहान में कायर ॥
नाच हम ने न कौन सा नाचा ।
कब तमाचा न खा लिया मुँह पर ॥

जब कभी जाति के दुखों पर हम ।
आँख अपनी पसार देते हैं ॥
है बुरा हाल सोच से होता ।
नोच मुँह बार बार लेते हैं ॥

कर थके सैकड़ों जतन, पर जी ।
जाति हित में कभी नहीं सनता ॥
देखते लोग हैं हमारा मुँह ।
मुँह दिखाते हमें नहीं बनता ॥

सजीवन बूटी

६१

इस सितम संगीन साँसत से कहीं ।
 आज तक कोई छिका नाका नहीं ॥
 क्यों कहें, दिल के फफोलों की टपक ।
 टूट मुँह का तो सका टाँका नहीं ॥

आँख जो काढ़ी गई आँसू कढ़े ।
 जी चुराने के लिये जो जी गया ॥
 जो सितम औ साँसतों की हृद हुई ।
 सी कहे जो मुँह किसी का सी गया ॥

क्या दवायेंगे भला वे और को ।
 आप ही जो दूसरों से दब चले ॥
 रख सकेंगे दाव वे कैसे भला ।
 दाव लें जो दूब दाँतों के तले ॥

किस तरह रंग तब चढ़े पक्का ।
 जब कि कच्चा न रंग ही छूटा ॥
 किस तरह दाँत तब मिलें सच्चे ।
 दाँत ही जब न दूध का टूटा ॥

धूम के साथ धाकवालों ने ।
 हैं दिये धाक के लिये धोखे ॥
 और का चीख चीख कर लोहू ।
 दाँत किस के न हो गये चोखे ॥

जी हमारा बहुत गया कुम्हला ।
 जी कहाँ से खिला हुआ ले लें ॥
 है न हँसते न खेलते बनता ।
 हम भला किस तरह हँसें खेलें ॥

मेलते योहीं रहेंगे क्या सदा ।
 आज दिन हैं जिस तरह दुख मेलते ॥
 क्या न खेलेंगे हँसेंगे उस तरह ।
 हम रहे जैसे कि हँसते खेलते ॥

हम जिसे खोल भी नहीं सकते ।
 किस तरह से भला उसे खोलें ॥
 बेतरह जब पिटा लिया उस को ।
 कौन मुँह से भला हँसें बोलें ॥

मान मरजादा मिटा कर जाति की ।
 इस जगत में जो जिये तो क्या जिये ॥
 नाम की वह प्यास मिट्टी में मिले ।
 जो कि बुझ पाई न बातों के पिये ॥

नीच को तो बिठा लिया सिर पर ।
 ऊँच की चोटियाँ गई नोची ॥
 हो गया दूर जाति का सब दुख ।
 दूर की बात है गई सोची ॥

सजीवन बूटी

६३

भूख कितनों का लहू है पी रही ।
 रोग कितनों का लहू हैं गारते ॥
 लोग हैं बेमौत लाखों मर रहे ।
 हम नहीं हैं आह तब भी मारते ॥

जा रही हैं सूखती सारी नसें ।
 पर लगी जोंकें गईं घींची नहीं ॥
 बेतरह है जाति का खिंचता लहू ।
 आह हम ने आज भी खींची नहीं ॥

दिल हुआ ठंडा, लहू ठंडा हुआ ।
 देख ठंडे आँख की ठंडक बढ़ी ॥
 हो चले हम बेतरह ठंडे मगर ।
 आह ठंडी तो नहीं अब भी बढ़ी ॥

किस तरह वे उन्हें जलायेंगी ।
 जो सितम ढूँढ ढूँढ कर ढाहें ॥
 जब हमीं में न रह गई गरमी ।
 क्या करेंगी गरम गरम आहें ॥

जाति - बेचैनियाँ हमें अब भी ।
 आह ! निज रंग में नहीं रँगती ॥
 तार बँधता न आँसुओं का है ।
 आज भी हिचकियाँ नहीं लगती ॥

रंगरलियों की जहाँ पर धूम थी ।
 आँसुओं की है वही धारा वहाँ ॥
 आज गरदन बेतरह है नप रही ।
 पर हमारी फिर सकी गरदन कहाँ ॥

क्या बखेड़े हैं नहीं पीछे पड़े ।
 क्या कड़ी आँखें न दुखड़ों की लखी ॥
 धार तीखी क्या कँपाती है नहीं ।
 क्या उठी तलवार गरदन पर रखी ? ॥

जाति-हित-गाड़ी न दलदल से कड़ी ।
 चाहिये था जो न करना वह किया ॥
 जब कि कंधा था लगाना चाहता ।
 आह ! हम ने डाल तब कंधा दिया ॥

घिस चुके जितना कि घिस सकते रहे ।
 लाभ क्या अब एड़ियाँ अपनी घिसे ॥
 आग ही उस पीसने में जाय लग ।
 जिस पिसाई में पड़े उँगली पिसे ॥

कम नमूने न हैं मुसीबत के ।
 कम सितम के बने न साँचे हैं ॥
 आज तो वे तमक तमक कर के ।
 बेतरह मारते तमाचे हैं ॥

सजीवन बूटी

६५

आज हूँ बार बार मैं गिरता ।
 सामने हैं बहुत बुरे नाले ॥
 थामते हाथ क्यों नहीं मेरा ।
 है कहाँ हाथ थामनेवाले ॥

कौन सा कारवार छूट सका ।
 है बहुत अवतरी नहीं जिस में ॥
 क्या बचा रह गया विचार करें ।
 मौत का हाथ है नहीं किस में ॥

लोग बेजान बन गये जब हैं ।
 जब मरे मन मिले, न जाग जगे ॥
 तब हमारे हरेक मनसब पर ।
 क्यों मुहर मौत हाथ की न लगे ॥

क्यों न तो मेल जोल लट जाता ।
 एकता क्यों न छटपटा जाती ॥
 देख कर नाक जाति की छिदती ।
 छरछराती अगर नहीं छाती ॥

आप अपनी जड़ हमीं जब खोद दें ।
 किस तरह हम तब भला फूलें फलें ॥
 जब दलाते हैं हमीं दिल थाम तो ।
 लोग कोदो क्यों न छाती पर दलें ॥

वेतरह दूट दूट करके हम ।
 हो रहे हैं समान रेजे के ॥
 पास होते हुए कलेजा भी ।
 हैं हमीं लोग वे कलेजे के ॥

कव सताये गये नहीं दुखिये ।
 ला उन्हीं पर सका बला विल भी ॥
 बाल ही है पका नहीं मेरा ।
 देखते देखते पका दिल भी ॥

रुक सके रोके न परहित के लिये ।
 जातिहित पर ठीक जम पाये नहीं ॥
 देसहित पथ पर थमा कर थक गये ।
 ए हमारे पाँव थम पाये नहीं ॥

क्या बचा छोड़ एक लोप ललक ।
 आ गई अवतरी नहीं जिस में ॥
 खोल कर आँख की पलक देखें ।
 है नहीं मौत की झलक किस में ॥

सजीवन बूटी

६७

अपने दुखड़े

जब कि जीना न रह गया जीना ।
तब भला है कि मौत ही आती ॥
जब कि उठना बहुत सताता है ।
आँख तो बैठ क्यों नहीं जाती ॥

चार करना भी जिन्हें आता नहीं ।
चल सकी तलवार उन की कब कहीं ॥
सिर उठा कैसे सकेंगे वे भला ।
आँख अपनी जो उठा सकते नहीं ॥

जब कि दबते गये दवाने से ।
लोग कैसे न तब दबावेंगे ॥
जब कि हम आँख देख लेवेंगे ।
लोग आँखें न क्यों दिखावेंगे ॥

दौड़ में सब जातियाँ आगे बढ़ीं ।
पेट में सबके पड़ी है खलबली ॥
आज भी हम करबटे हैं ले रहे ।
खुल सकीं खोलें न आँखें अधखुली ॥

काटने से कट न दुख के दिन सके ।
यों पड़े कब तक रहें काँटों में हम ॥
आज भी जी का नहीं काँटा कड़ा ।
है खटकता आँख का काँटा न कम ॥

चुभते चौपदे

रह गई अब न तब रोने की ।
 दर दुखों का कहाँ तलक मुँदें ॥
 कम निचोड़ी गई नहीं आँखें ।
 आँसुओं की कहाँ मिलें बूँदें ॥

जाति का दिन फिरा जिन्हें पाकर ।
 जो न फरफंद के रहे नेही ॥
 है विपद फेरफार में फँस कर ।
 मुँह फुलाये फिरें अगर वे ही ॥

सुन सके तो किस तरह से सुन सके ।
 कान में जब तेल ही डाला रहा ॥
 खुल सके तो किस तरह से खुल सके ।
 जब किसी मुँह में लगा ताला रहा ॥

हो बुरा उन कचाइयों का जो ।
 पत उतारे बिना नहीं मुड़तीं ॥
 जब हवा आप हो गये हम तो ।
 क्यों न मुँह पर हवाइयाँ उड़तीं ॥

पेट कैसे न तब भला ऐंठे ।
 जब कि हैं मल भरी हुई आँतें ॥
 तो न क्यों जाति पेच में पड़ती ।
 जो रुचीं पेचपाच की बातें ॥

सजीवन बूटी

६९

दिन अगर लाग डाँट में वीतें ।
तो कटें खींच तान में रातें ॥
आज हैं दिल मिले अलग होते ।
हैं कहाँ मेल जोल की बातें ॥

जब कि नामरदी पड़ी है वाँट में ।
क्यों न तब मरदानपन की जड़ खने ॥
तब भला मरदानगी कैसे रहे ।
मूँछ वनवा जब सरद अमरद बने ॥

है भला और क्या हमें आता ।
दूसरी बात और क्या होती ॥
हँस दिये देख सूरतें हँसती ।
रो दिये देख सूरतें रोती ॥

किस लिये इस तरह गया पकड़ा ।
इस तरह क्यों अभाग आ टूटा ॥
जायगा छूट या न छूटेगा ।
आज तक तो गला नहीं छूटा ॥

जी गया ऊब कर जतन कितने ।
जा रहा है बुरी तरह जकड़ा ॥
है कुदिन ने बुरी पकड़ पकड़ी ।
है गया बेतरह गला पकड़ा ॥

चुभते चौपदे

जो बुरा हो चाहते, कर लो बुरा ।
 क्या भलाई कर नहीं देगा भला ॥
 बंधनों को खोलते हैं दूसरे ।
 बाँध दो जो बाँध देते हो गला ॥

कौन किस की भला पुकार सुने ।
 कौन किस के लिए भला आये ॥
 देखते आँख फाड़ फाड़ रहे ।
 हम गला फाड़ फाड़ चिल्लाये ॥

घिर गये बेतरह विपत - बादल ।
 मच गई लूट, पत गई लूटी ॥
 कूटते क्यों न तब फिरे छाती ।
 फूटते आँख बाँह भी टूटी ॥

हाल अब तो लिखा नहीं जाता ।
 आज दिन बात है सभी बदली ॥
 पक गया जी, बहक गया है मन ।
 थक गया हाथ, घिस गई उँगली ॥

है जहाँ पर पेट भीत पला नहीं ।
 किस तरह सुख से वहाँ कोई जिये ॥
 क्यों वहाँ पर चैन मिल पाये जहाँ ।
 है चपत चलता चपाती के लिये ॥

सजीवन वूटी

७१

तब थमेगी किस तरह संजीदगी ।
 थामने से मन न जब थमता रहा ॥
 तब हमारी किस तरह चाँदी रहे ।
 जब कि चाँदी पर चपत जमता रहा ॥

हे मुसीबत बेतरह पीछे पड़ी ।
 हैं नहीं सामान बचते साथ के ॥
 हाथ मल मल कर न क्यों पछताँय हम ।
 उड़ गये तोते हमारे हाथ के ॥

टूटने की ज्योंत बहुतेरी हुई ।
 पर बुरा बंधन तनिक टूटा नहीं ॥
 छूटते तो किस तरह हम छूटते ।
 जब हमारा हाथ ही छूटा नहीं ॥

बेतरह है गला बँधा अब भी ।
 है न रस्सी कमरबँधी छूटी ॥
 पाँव की वेड़ियाँ न खुल पाईं ।
 हथकड़ी हाथ की नहीं टूटी ॥

टूट पाये न जाल दुखड़ों के ।
 उलझनों के नुचे न झोले हैं ॥
 खोलते खोलते पड़े फंदे ।
 पड़ गये हाथ में फफोले हैं ॥

चुभते चौपदे

मन हमारा रहा नहीं वस में ।
 और कस में रही नहीं काया ॥
 है इसी से वसर नहीं होती ।
 रह सका हाथ का न सरमाया ॥

देख करके नौजवानों की वहँक ।
 सिरधरों की बात सुन कर अटपटी ॥
 देखकर टूटा हुआ दिल जाति का ।
 भाग ही फूटा न, छाती भी फटी ॥

क्यों भला वेतावियाँ बढ़ती नहीं ।
 बेतरह लूटे गये, बेढव पिटे ॥
 तब भला जी जाय क्यों छितरा नहीं ।
 जब कि छाती में रहें काँटे छिंटे ॥

हो गये शल हाथ सब तद्वीर के ।
 घट गया बल, पड़ गई पीछे बला ॥
 हम उबर पाये न सिर के वार से ।
 बोझ छाती का नहीं टाले टला ॥

उस बहुत ही बुरे वसेरे में ।
 है जहाँ वैर फूट का डेरा ॥
 जाति को देख बेधड़क जाते ।
 है कलेजा धड़क रहा मेरा ॥

सजीवन बूटी

७३

चाहिये था कि जाति का बेड़ा ।
 रह सजग ढंग से सँभल खेते ॥
 देख गिरदाव में गिरा उस को ।
 हैं कलेजा पकड़ पकड़ लेते ॥

सामने से बहाव जो आया ।
 वह उसी में गई, न पाई थम ॥
 देख यह जाति की बड़ी सुबुकी ।
 रह गये थाम कर कलेजा हम ॥

तब ई कब नहीं उधर ही फिर ।
 जब किसी ने उसे जिधर फेरा ॥
 जाति का देख बेकलेजापन ।
 है कलेजा निकल पड़ा मेरा ॥

जाति के पाँचवें सवारों में ।
 और उन में जिन्हें कहें वरतर ॥
 देख कर चोट बेतरह चलती ।
 चोट है लग रही कलेजे पर ॥

हम दुखी हैं कहें कहाँ तक दुख ।
 कब न सूई चुभी नयन तिल में ॥
 कब रहे दुख न फूलते फलते ।
 कब फफोले पड़े नहीं दिल में ॥

चुभते चौपदे

आज दिन भी बेतरह हैं पिस रहे ।
छूटते उन के बतोलें हैं नहीं ॥
हैं फफोले पर फफोले पड़ रहे ।
टूटते दिल के फफोले हैं नहीं ॥

देख करके चहल पहल अब तो ।
दिल अनायास है दहल जाता ॥
क्यों न सब दुख-सवाल हल होते ।
दिल हमारा अगर वहल जाता ॥

वह रहा फूल हो गया काँटा ।
स्वर्ग से भूत का बना डेरा ॥
लाट था अब गया बहुत ही लट ।
बल पड़े दिल उलट गया मेरा ॥

है बुरी चाट लग गई जी को ।
बेतरह है कचट कचट जाता ॥
हो गया है उचाट कुल ऐसा ।
आज दिल है उचट उचट जाता ॥

क्या कभी अब नहीं खिलेगा वह ।
फूल सुख का न खिल सका मेरा ॥
खा बुरी चोट दुख - चपेटों की ।
हो गया चूर चूर दिल मेरा ॥

सजीवन बूटी

७५

है कलेजा निकल रहा मेरा ।
 हैं लहू घूँट इन दिनों पीते ॥
 काटते हैं बड़े दुखों से दिन ।
 पेट हम काट काट हैं जीते ॥

भीख माँगे हमें नहीं मिलती ।
 रह गये हाथ में नहीं पैसे ॥
 आग है लग गई कमाई में ।
 पेट की आग बुझ सके कैसे ॥

पेट पापी नहीं कराता क्या ।
 सोच लें बल निकालनेवाले ॥
 पालना पेट तो पड़ेहीगा ।
 क्या करें पेट पालनेवाले ॥

आँख उठती नहीं उठाये भी ।
 मुँह बहुत ही सहम सिये हम हैं ॥
 रात दिन पेट थाम कर अपना ।
 दौड़ते पेट के लिये हम हैं ॥

कब दुखी-दुख सुखी समझता है ।
 मतलबी लोग हैं न यम से कम ॥
 रह गये हैं न देखनेवाले ।
 पेट अपना किसे दिखायें हम ॥

देखता कोई दुखी का दुख नहीं ।
 मूँद आँखों को दिया आराम ने ॥
 आज दिन है माँगना खलता बहुत ।
 हम खलायें पेट किस के सामने ॥

तरबतर हो आँसुओं से बेतरह ।
 कब हमारी बेकसी रोई नहीं ॥
 पीठ कैसे लग नहीं जाती भला ।
 है हमारी पीठ पर कोई नहीं ॥

जातिहित के बड़े कठिन पथ में ।
 कब ठहर वह सका ठिकाने से ॥
 टल गया टालटूल कर कितने ।
 टिक सका पाँव कब ठिकाने से ॥

सब सुखों के हमें पड़े लाले ।
 है कुदिन ने न कौन डाले बल ॥
 है न कल मिल रही कसाले सह ।
 घिस गये पाँव कोस काले चल ॥

हित न हो पाया गया चित हो दुचित ।
 आँख से आँसू छगूना नित छना ॥
 कोस काले चल कलेजा हिल गया ।
 पाँव काँटों से छिले छलनी बना ॥

सजीवन बूटी

७७

काहिली भागी भगाने से नहीं ।
 है नहीं जीवट जगाने से जगी ॥
 तूल हो दुख तिल गया है ताल वन ।
 है हमें तब भी न तलवों से लगी ॥

जी की कचट

जो बड़े वेपीर को पिघला सके ।
 जाय टल जिस से विपद बादल घिरा ॥
 चाहिये जैसा गरम वैसा रहे ।
 हम सके ऐसा कहाँ आँसू गिरा ॥

छोड़ दें आप अठकपालीपन ।
 मत करें होंठ काट काट सितम ॥
 हो चुके काठ गाँठ का खोकर ।
 रो चुके आठ आठ आँसू हम ॥

भर गये छलके अड़े उमड़े बहुत ।
 मोतियों के रंग में ढलते बड़े ॥
 कर सके क्या, गिर गले, जल भुन गये ।
 एक क्या सौ बार तो आँसू कड़े ॥

चुभते चौपदे

आँखवाले आँख भर कर हैं खड़े ।
 अब बड़ी बेहूदगी से ऊब जा ॥
 क्यों डुवाती जाति को है बाहू तू ।
 डवडवाये आँसुओं में डूब जा ॥

आदमीयत की अगर होती चली ।
 तो न अनवन आग जग देता जगा ॥
 रंग छाती प्यार की रंगत अगर ।
 हाथ जाता तो न लोहू से रँगा ॥

हो रहा है बेतरह बेचैन जी ।
 सुध हमारी बेसुधी है लूटती ॥
 देख कर कटता कलेजा जाति का ।
 फूटती हैं आँख, छाती टूटती ॥

मेलते मेलते मुसीबत को ।
 हो गया नाक में हमारा दम ॥
 हो गये काठ, बन गये पत्थर ।
 थामते थामते कलेजा हम ॥

दे जिन्हें मान मान मिलता है ।
 मान हैं कर रहे उन्हीं का कम ॥
 देख यह हाल नौनिहालों का ।
 थाम कर रह गये कलेजा हम ॥

सजीवन बूटी

७९

अब उसे किस तरह जगायें हम ।
जाग कर वह अगर नहीं जगता ॥
क्या करें लोग चाग के हित में ।
लाग से दिल अगर नहीं लगता ॥

सिर मुकाने से सका जितना कि मुक ।
झंझटें सह सैकड़ों मुकता गया ॥
जो कभी उकता, सका उकता नहीं ।
अब वही दिल है बहुत उकता गया ॥

तब भला कैसे पटायें पट सके ।
जब कि उस से आज तक पाई न पट ॥
वह चलते चोट थकता ही नहीं ।
चोट खा खा बढ़ गई जी की कचट ॥

देस का दुख बखानती बेला ।
किस तरह रुंध गला नहीं जाता ॥
जाति की देख कर भरी आँखें ।
जी रहा कौन सा न भर आता ॥

देस पर जो निसार होते थे ।
हार अब वे रहे नहीं वैसे ॥
पड़ गये कान में भनक ऐसी ।
जायगा जी सनक नहीं कैसे ॥

चुभते चौपदे

क्या कुदिन अब सुदिन नहीं होगा ।
 दिन व दिन गात है लटा जाता ॥
 नस गई सूख धँस गई आँखें ।
 पेट है पीठ से सटा जाता ॥

काम जो आज कर रहे हैं हम ।
 कब गया वह कठिन नहीं माना ॥
 साँसतें नित नई नई सह सह ।
 है सहल पाँव का न सहलाना ॥

समय का फेर

धन विभव की बात क्या जिन के बड़े ।
 रज बराबर थे समझते राज को ॥
 है तरस आता उन्हीं के लाड़िले ।
 हैं तरसते एक मूठी नाज को ॥

क्या दिनों का फेर हम इस को कहें ।
 या कि है दिखला रही रंगत विपत ॥
 थी कभी हम से नहीं जिन की चली ।
 आज दिन वे ही चलाते हैं चपत ॥

सजीवन बूटी

८१

वेर, खा वे बिता रहे हैं दिन ।
 जो रहे धन-कुबेर कहलाते ॥
 अन्न से घर भरा रहा जिन का ।
 आज वे पेट भर नहीं पाते ॥

चाव से चुगते जहाँ मोती रहे ।
 हंस तज कर मानसर आये हुए ॥
 पोच दुख से आज वाँ के जन पचक ।
 फिर रहे हैं पेट पचकाये हुए ॥

जो सुखों की गोदियों के लाल थे ।
 दिन व दिन वे हैं दुखों से घिर रहे ॥
 जो रहे अकड़े जगत के सामने ।
 आज वे हैं पेट पकड़े फिर रहे ॥

वाँटते जो जहान को उन को ।
 सुध रही वाट वाँटने ही की ॥
 पाटते जो समुद्र थे उन को ।
 है पड़ी पेट पाटने ही की ॥

पेट जिन से चींटियों तक का पला ।
 जा सके जिन के नहीं जाचक गिने ॥
 कट रहे हैं पेट के काटे गये ।
 लट रहे हैं कौर वे मुँह का छिने ॥

८२

चुभते चौपदे

दूध पीने को उन्हें मिलता नहीं ।
 जो सहित परिवार पीते घी रहे ॥
 अब किसी का पेट भर पाता नहीं ।
 लोग आधा पेट खा हैं जी रहे ॥

पेट भर अब अन्न मिलता है कहाँ ।
 हैं कहाँ अब डालियाँ फल से लदी ॥
 वह रहा है सोत दुख का अब वहाँ ।
 थी जहाँ घी दूध की बहती नदी ॥

छिन गया आज कौर मुँह का है ।
 गाय देती न दूध है दूहे ॥
 है घुरा हाल भूख से मेरा ।
 पेट में क्रूर हैं रहे चूहे ॥

बात बिगड़े नहीं किसी की यों ।
 मरतवा यों न हो किसी का कम ॥
 पाँव मेरे जहान पड़ता था ।
 दुख पड़े पाँव पड़ रहे हैं हम ॥

आज वे हैं जान के गाहक बने ।
 मुँह हमारा देख जो जीते रहे ॥
 हाथ धो वे आज पीछे हैं पड़े ।
 जो हमारा पाँव धो पीते रहे ॥

सजीवन बूटी

८३

बू जिन्हें मैल दूर होता था ।
 आज वे हो गये बहुत मैले ॥
 वे नहीं आज फैलते घर में ।
 पाँव जो थे जहान में फैले ॥

चेतरह क्यों न दिल रहे मलता ।
 दुख दुखी चित्त किस तरह हो कम ॥
 लोटते पाँव के तले जो थे ।
 पाँव उनका पलोटते हैं हम ॥

गालियाँ हैं आज उन को मिल रहीं ।
 गीत जिन का देवते थे गा रहे ॥
 पाँव जिन के प्रेम से पुजते रहे ।
 पाँव की वे ठोकरें हैं खा रहे ॥

अब वहाँ छल की, कपट की, फूट की ।
 नटखटी की है रही फहरा धुजा ॥
 पापियों का पाप मन का मैल धो ।
 है जहाँ पर पाँव का धोअन पुजा ॥

आज वे पाले दुखों के हैं पड़े ।
 जो सदा मुख - पालने में ही पले ॥
 सेज पर जो फूल की थे लेटते ।
 वे रहे हैं लेट तलवों के तले ॥

जगाने की कल

फटकार

बात चिकनी कपट भरी कह कर ।
जब कि वह जाति पर बला लावे ॥
जब रही खींचतान में पड़ती ।
जीभ तब खैच क्यों न ली जावे ॥

पेट की चापलूसियों में पड़ ।
गालियाँ जो कि जाति को देवें ॥
चाहिये तो बिना रुके हिचके ।
जीभ उन की निकाल ही लेवें ॥

जो कि वेढंग चल करे चौपट ।
चाहिये ऐंच कर उसे दम लें ॥
जाति की नाक कट गई जिस से ।
काट उस जीभ को न क्यों हम लें ॥

जगाने की कल

८५

वार पर वार कर रही जब थी ।
 तब भला किस तरह, तरह देते ॥
 पड़ गई जाति गाढ़ में जिस से ।
 काढ़ उस जीभ को न क्यों लेते ॥

जाति के काम जब नहीं आते ।
 डींग हम मारते रहे तब क्या ॥
 जब कि फटकार ही रही पड़ती ।
 मूँछ फटकारते रहे तब क्या ॥

जाति के देख देख कर दुखड़े ।
 जो न वेताब बन उन्हें पूछें ॥
 रोंगटे जो खड़े न हो जावें ।
 तो रहीं क्या खड़ी खड़ी मूँछें ॥

जाग तब कैसे सकेंगे, ज्ञान की ।
 जोत जी में जब कि जगती ही नहीं ॥
 तब भला कैसे हमें जी से लगे ।
 बात लगती जब कि लगती ही नहीं ॥

है वहँक इतनी कि कितनी बात को ।
 ताड़ कर के भी नहीं हम ताड़ते ॥
 है हमारी बात की यह शानगी ।
 हैं बना कर बात बात बिगाड़ते ॥

क्यों न बल को तौल लें, होगा बुरा ।
 बात जी में वेठिकाने की ठने ॥
 क्या किसी की हम गढ़ेंगे हड्डियाँ ।
 बात गढ़ लेवें अगर गढ़ते बने ॥

जीभ सड़ जाती न जानें क्यों नहीं ।
 बेअटक कहते हुए बातें सड़ी ॥
 बात सीधी किस तरह से तब कहें ।
 बाँट में जब बात टेढ़ी ही पड़ी ॥

दूर की लेंगे बक्के वहक कर ।
 काम के हित जी हुआ वै ही नहीं ॥
 किस तरह लेंगे खिलौना चाँद का ।
 बात है, करतूत कुल है ही नहीं ॥

जाति को देख कर पड़ा दुख में ।
 अब चलेंगे न हम मदद देने ॥
 पड़ गये काम काइयाँपन कर ।
 लग गये हैं जँभाइयाँ लेने ॥.

है उन्हें छुट्टी कहाँ जो कुल करें ।
 क्या हुआ जो आबरू है जा रही ॥
 लें अगर अँगड़ाइयाँ हैं ले रहे ।
 लें जँभा जो है जँभाई आ रही ॥

जगाने की कल

८७

जाति औ प्रीति की अजब जोड़ी ।
 है वैधी धाक जो विछुड़ खोती ॥
 आज तक भी जुड़ी न जोड़े से ।
 है इसी से थुड़ी थुड़ी होती ॥

जल गया वह मुँह न क्यों जिससे कि हम ।
 जातिहित को भाड़ में हैं भूँकते ॥
 मुँह छिपा लेवें, मगर मुँह पर भला ।
 थूकनेवाले न कैसे थूकते ॥

आज दिन तो हैं कलेजे चिर रहे ।
 क्या हुआ दो चार उँगली जो चिरी ॥
 क्यों फिराये आँख फिरती ही नहीं ।
 क्या छुरी अब भी न गरदन पर फिरी ॥

राह उलटी किस लिये पकड़ी गई ।
 क्यों घुमाने से नहीं हैं घूमते ॥
 जो अँगूठा हैं हमें दिखला रहे ।
 क्यों अँगूठा हैं उन्हीं का चूमते ॥

हो सकेगा काम तो कोई नहीं ।
 बात हित की सुन चिटक जाया करें ॥
 चोट जी को तो लगेगी ही नहीं ।
 उँगलियों को बैठ चटकाया करें ॥

८८

चुभते चौपदे

हो सकेगी वात कैसे दूसरी ।
 मुँह भलाई से सदा मोड़ा करें ॥
 फोड़ पायें तो रहें घर फोड़ते ।
 बैठ कर या उँगलियाँ फोड़ा करें ॥

सूरमापन अगर न धाक रखे ।
 चाहिये तो चलें न धमकाने ॥
 जो न तलवार को सकें चमका ।
 तो लगेँ उँगलियाँ न चमकाने ॥

वात हित की जमी नहीं जी में ।
 पग न पाया विचारपथ में थम ॥
 किस लिये आज हो गये जड़ हैं ।
 क्या तमाचे जड़े गये हैं कम ॥

जाति-हित-रुचि जब कि जी में आ जमी ।
 बन गई तब काहिली कैसे सगी ॥
 लग से लगते नहीं क्यों काम में ।
 हाथ में तो है नहीं मेंहदी लगी ॥

किस तरह तो हम निरे पत्थर नहीं ।
 चोट जी को जब कि लग पाती नहीं ॥
 देख टुकड़ा जाति का छिनते अगर ।
 सैकड़ों टुकड़े हुई छाती नहीं ॥

जगाने की कल

८९

देस का मुँह गया बहुत कुम्हला ।
 किस तरह मुँह रहा खिला तेरा ॥
 छिल रहा जाति का कलेजा है ।
 पर कलेजा कहाँ छिला तेरा ॥

हौसले की गोद में हित हैं पले ।
 है जहाँ साहस उमंगें हैं वहीं ॥
 वेदिली कैसे न दिल में धर करे ।
 पास दिल है पर दिलेरी है नहीं ॥

देसहित देख जो नहीं पाते ।
 जातिहित है अगर नहीं भाता ॥
 आँख तो फूट क्यों नहीं जाती ।
 किस लिये बैठ जी नहीं जाता ॥

जान में जान तो न आयेगी ।
 आन भी जायगी चली धीमे ॥
 चात बेजान जाति के हित को ।
 जो जमाये जमी नहीं जी में ॥

जातिहित का जाप क्या जपते रहे ।
 देख जो भय का भयानक मुख भगे ॥
 देस दुख दलने चले क्या दौड़ कर ।
 पेट में जो दौड़ने चूहे लगे ॥

चुभते चौपदे

तब सकेंगे पाल कैसे देस को ।
 जब कि है परिवार भी पलता नहीं ॥
 तब चलाये राज कैसे चल सके ।
 जब चलाये पेट भी चलता नहीं ॥

है जिसे पेट देश से प्यारा ।
 जो जने जाति का अहितकारी ॥
 मर गया वह न क्यों जनमते ही ।
 क्यों गई कोख वह नहीं मारी ॥

दौड़ कर के जातिहित - मैदान में ।
 पाँव कैसे वह भला सकता गड़ा ॥
 चल दवे पाँवों परग दो चार ही ।
 पाँव दबवाना जिसे अपना पड़ा ॥

किस लिये भाग हैं खड़े होते ।
 क्यों सुपथ में न पाँव अड़ पाया ॥
 गड़ गये आप क्यों न लाज लगे ।
 पाँव गाड़े, अगर न गड़ पाया ॥

देस भिल जाय धूल में तो क्या ।
 भूल है जो उन्हें कहें अहदी ॥
 वे उठें फूल सेज तज कैसे ।
 पाँव की जायगी बिगड़ मेंहदी ॥

जगाने की कल

९१

जी भलाई के लिये है फूलता ।
तो समय पर क्यों विफल है हो रहा ॥
भय हुए फूले समाते आप हैं ।
पाँव कैसे फूल जाता तो रहा ॥

काल के गाल में न कौन गया ।
अब कहाँ वेणु, कंस, रावन हैं ॥
छोड़ कर जाति - पाँव पावन क्यों ।
पूजते पाँव हम अपावन हैं ॥

किस लिये है आँख पर परदा पड़ा ।
दिन व दिन है उठ रहा परदा ढका ॥
लात पर है लात लगती जा रही ।
छूट तलवे का न सहलाना सका ॥

देशहित और जातिहित पथ में ।
चाव से जो नहीं सके चल वे ॥
तो तुरत जाँय धूल ही में मिल ।
जाँय गल पाँव, जाँय जल तलवे ॥

लान तान

जब कि कस ली पत गँवाने पर कमर ।
 पत उतरने का रहा तब कौन डर ॥
 वेपरद क्यों हों न परदेवालियाँ ।
 पड़ गया परदा हमारी आँख पर ॥

नित कचूमर है धरम का कढ़ रहा ।
 है भली करनी कलपती दुखभरी ॥
 जो गई हैं बाहरी आँखें बिगड़ ।
 तो गई क्यों फूट आँखें भीतरी ॥

क्यों सुनोगे मरे या जाति जिये ।
 बस तुम्हें खाना पीना सोना है ॥
 सच है अंधे के सामने रोना ।
 अपने आप अपनी आँख खोना है ॥

देस का दुख न देखनेवाले ।
 देख पाये कहीं न तुम जैसे ॥
 आँख ऊँची न रख सके जब तो ।
 आँख ऊँची भला रहे कैसे ॥

कुछ न सूझा, है न अब भी सूझता ।
 दाम देते हैं हमीं तो राख का ॥
 खोल देखो आँख हम सा है कहाँ ।
 गाँठ का पूरा व अंधा आँख का ॥

जगाने की कल

९३

पाँव होते पड़े रहे पीछे ।
 हाथ होते न कर सके धंधे ॥
 सूझती हैं भलाइयाँ न हमें ।
 आँख होते बने रहे अंधे ॥

बँध सकेंगे न एक डोरे में ।
 तोड़ कर के रहा सहा बंधन ॥
 घर बसा कब उजाड़ कर के घर ।
 जा सका आज भी न अंधापन ॥

डालते आज भी नहीं बनता ।
 बोझ से बेतरह छिले कंधे ॥
 है हमें देख भाल का दावा ।
 सच तो यों है कि हैं बड़े अंधे ॥

वह ललाई रही नहीं मुँह की ।
 है सियाही निखर रही छन छन ॥
 रंग पहचान तब सकें कैसे ।
 रंग लाता है जब कि अंधापन ॥

दिन व दिन हैं बिगड़ रहे लेकिन ।
 हैं वही काम औ वही धंधे ॥
 क्यों हरा ही हरा न सूझेगा ।
 जब कि सावन के आप हैं अंधे ॥

सुन जिसे धाँधली दहल उठती ।
 और जाते दबक दिखावे सब ॥
 जब बजाये बजे न वे बाजे ।
 हम रहे गाल क्या बजाते तब ॥

पूछता बात तक नहीं कोई ।
 पर नहीं तार डींग का टूटा ॥
 ठोकरे हैं गली गली खाते ।
 गाल का मारना नहीं छूटा ॥

लोग अपने हकों पदों को भी ।
 वीरता के बिना नहीं पाते ॥
 जब गई वीरता बिदा हो तब ।
 क्या रहे बार बार मुँह बाते ॥

पाँव पर अपने खड़े होते नहीं ।
 धन लुटा कर दिन व दिन हैं चूकते ॥
 चाटते हैं जब पराया थूक हम ।
 लोग तब कैसे न मुँह पर थूकते ॥

बेटियाँ वेंच वेंच पेट पला ।
 हैं लुट्टी हाथ से न राँड़ें कम ॥
 हैं छिपाते छिपी हुई चालें ।
 पर कभी मुँह नहीं छिपाते हम ॥

जगाने की कल

९५

क्यों वचाये न आँख वह, जिसने ।
जाति को वेंच पा लिये पैसे ॥
लग गया जब कलौंस ही मुँह में ।
तब भला मुँह दिखा सके कैसे ॥

कर दिखाते भलाइयाँ तब क्या ।
जब भला ठान भी नहीं ठनता ॥
तब भला भाग खोल देते क्या ।
जब कि मुँह खोलते नहीं बनता ॥

है न पाता पनाह अपनापन ।
मेल को धूल में मिला डाला ॥
जाति को डाल काल के मुँह में ।
वेतरह मुँह किया गया काला ॥

क्या हँसी खेल है सँभल जाना ।
तुम कहीं बैठ कर हँसो खेलो ॥
है तुमारा न मुँह कि सँभलोगे ।
मुँह तनिक देख आइने में लो ॥

नौजवानों की उमंगों को कुचल ।
तुम गये हो आँख में वेढव समा ॥
जो चले हो जाति का मुँह मूँदने ।
दाँत तालू में तुमारे तो जमा ॥

चुभते चौपदे

हम रहेंगे बेसुधे कब तक बने ।
 ओस से भी प्यास जाती है कहीं ॥
 क्यों न तलवों से हमें अब भी लगी ।
 दिन रहे तालू उठाने के नहीं ॥

खुल गया भेद सब बिना खोले ।
 आँख बतलाइये खुलेगी कब ॥
 भर लवालव गया सितम - प्याला ।
 खुल हमारा सका न अब भी लव ॥

जब कि था चाहिये नहीं दबना ।
 तब भला किस लिये गये दब हम ॥
 जब कि था चाहिये उसे खुलना ।
 तब हुआ वन्द क्यों हमारा लव ॥

क्या न दो बात कह सकें हम ।
 क्यों हमें है विपत्ति ने घेरा ॥
 कौन बेजान है भला हम सा ।
 जी हिला पर न लव हिला मेरा ॥

तो कहौं धुन हमें लगी सच्ची ।
 जातिहित जो सही न आँच कड़ी ॥
 मुँह हमारा अगर नहीं सूखा ।
 होंठ पर जो पड़ी नहीं पपड़ी ॥

जगाने की कल

९७

वैरियों को न चाट जव पाया ।
 तब रहे होंठ चाटते हम क्या ॥
 जव सके काट ही न दुख अपना ।
 तब रहे होंठ काटते हम क्या ॥

जाति को राह पर लगाने की ।
 काम की बात सैकड़ों सिखला ॥
 तब भला क्या निकालते सूरत ।
 जव कि सूरत सके नहीं दिखला ॥

जाति जिस से उठे हिले डोले ।
 पत्थरों की न जाय वन मूरत ॥
 तो न सूरत दिखाइये हम को ।
 जो न इस की बताइये सूरत ॥

दूर बेचारपन करें सारा ।
 मत विचारा करें महूरत ही ॥
 क्या नतीजा सवाल का होगा ।
 साहबो है सवाल सूरत ही ॥

तो मरें डूब नाम सुन रन का ।
 है हमें आ गई अगर जूड़ी ॥
 जम लड़ें, दें पछाड़ जम को भी ।
 लें पहन हाथ में न हम चूड़ी ॥

हो गई क्यों न तो कई टुकड़े ।
 किस लिये टूट वह नहीं जाती ॥
 जाति के देख देख कर दुखड़े ।
 है न छाती अगर धड़क पाती ॥

छिन गया सरवस कलेजा छिल गया ।
 चौगुनी क्यों चोट लग पाती नहीं ॥
 छटपटाते देख दुख से जाति को ।
 क्यों छ टुकड़े हो गई छाती नहीं ॥

काठ हैं, जो जातिहित करते समय ।
 सेज आलस की हुई सूनी नहीं ॥
 जो न चौगुनी उमंगें हो गई ।
 हो गई छाती अगर दूनी नहीं ॥

बात तो जाति प्यार की सुन ली ।
 पर रहा वह न दुख अँगेजे पर ॥
 जाति पत कब रखी गई पत खो ।
 हाथ रख कर कहें कलेजे पर ॥

चुन सकें तो चाहिये चुन लें उन्हें ।
 आज तक काँटे न कम हैं वो गये ॥
 आज भी क्यों है धड़क खुलती नहीं ।
 दिल धड़कते तो बहुत दिन हो गये ॥

जगाने की कल

९९

बढ़ावा

काम में देर तब न कैसे हो ।
 दिल गया भूल भागवाले का ॥
 अब लगेगी न देर होने में ।
 जब लगा हाथ लागवाले का ॥

बार तलवार कर पड़ें पिल हम ।
 क्रूर को सूर साधना सिखला ॥
 मोड़ कर मुँह मिजाजवालों का ।
 दें मँजे हाथ के मजे दिखला ॥

किस लिये कमहिम्मती से काम लें ।
 वैरियों को क्यों नहीं दे मारते ॥
 कलह मरते आज क्यों जायें न मर ।
 हाथ छाती पर अगर हैं मारते ॥

चार बाहें तो किसी के हैं नहीं ।
 क्यों सतायें दूसरे औ हम सहें ॥
 क्यों रहें वे टूट पड़ते लूटते ।
 किस लिये हम कूटते छाती रहें ॥

जो बुरी बातें बहुत ही खल चुकीं ।
 इस समय भी वैसिही वे क्यों खलें ॥
 भाग को तो ठोंकते ही हम रहे ।
 आज छाती ठोंक कर भी देख लें ॥

१००

चुभते चौपदे

वह करे सामने न मुँह अपना ।
 जो करे सामना न नेजे का ॥
 क्यों विना जान का वने कोई ।
 जाय वन क्यों विना कलेजे का ॥

क्यों भला आसमान पर न चढ़ें ।
 जब पतंगें चढ़ीं चढ़ाने से ॥
 बढ़ करें क्यों न काम हम बढ़ बढ़ ।
 जाय बढ़ दिल अगर बढ़ाने से ॥

चिपत्ति के बादल

कोर कसर

कोयलों पर हम लगाते हैं मुहर ।
 पर मुहर लुट जा रही है हर घड़ी ॥
 मिट गये पर ऐंठ हैं अब भी बनी ।
 हैं अजब औंधी हमारी खोपड़ी ॥

बिपत्ति के बादल

१०१

है कहीं रोक थाम का पचड़ा ।
है कहीं काट छाँट का ऊधम ॥
अब इसे देख हम सकें कैसे ।
हो गया देख देख नाकों दम ॥

वात हो काम की बला से हो ।
हैं बड़े बेसुधे कहाँ ऐसे ॥
कान ही जब कि ले गया कौआ ।
तक उसे कान कर सकें कैसे ॥

देखता हूँ कि जाति का जौहर ।
है वहा ले चला समय सोता ॥
लोग होंगे खड़े कमर कस क्या ।
कान भी तो खड़ा नहीं होता ॥

बार सौ सौ सुना सुना ऊबे ।
जाति दुखड़ा सुना नहीं जाता ॥
थक गये काढ़ काढ़ने वाले ।
कान का मैल कढ़ नहीं पाता ॥

तब भला सूझता हमें कैसे ।
आँख में जब कि चुभ गई सूई ॥
तब सुनेंगे कहीं किसी की क्यों ।
कान में जब भरी रही रूई ॥

१०२

चुभते चौपदे

तब अगर वह उठा उठा तो क्या ।
 यह भला था उमेठना सहता ॥
 जाति की लान तान सुनने को ।
 कान जब है उठा नहीं रहता ॥

बात सुन वदहवास लोगों की ।
 क्यों भला वदहवास हम होवें ॥
 दौड़ पीछे पड़ें न कौवे के ।
 कान अपना न किस लिये टोवें ॥

जाति के लाल जो न लाल बने ।
 औ लिये पाल लाल औ मुनिये ॥
 तो खुलेगा न भाग खोले भी ।
 बात यह कान खोल कर सुनिये ॥

दौड़ थी दूर की बहुत लम्बी ।
 हम निराली छलांग भर न सके ॥
 नाम के तो रहे बहुत भूखे ।
 काम की बात कान कर न सके ॥

वह वचन बात से कहीं तीखा ।
 वेधता है विना विधे ही जो ॥
 छिद उठे जो उसे नहीं सुन कर ।
 कान में छेद ही नहीं है तो ॥

विपत्ति के बादल

१०३

जब कि जीवट गई रसातल को ।
 आप ही सोचिये रहा तब क्या ॥
 जब खुले आम कह नहीं सकते ।
 कुछ दबी जीभ से कहा तब क्या ॥

क्यों रहेगी जाति जीती जागती ।
 जब घड़ी है मेल की ही टल रही ॥
 ठीक नाड़ी है न चलती बूझ की ।
 सूझ की ही साँस जब है चल रही ॥

जान ही जब नहीं किसी में है ।
 तब भला मान क्यों रहे मन में ॥
 किस तरह साँस ले भला कोई ।
 साँस ही जब रही नहीं तन में ॥

जाति के हित के लिए कस कर कमर ।
 भूल कोई किस लिए जाता रहा ॥
 मुँह दिखायेगा भला तब किस तरह ।
 साँस तक भी जो नहीं नाता रहा ॥

वैर जैसे बड़े लड़ाके को ।
 प्रीति कैसे पछाड़ तब पाती ॥
 पाँव अनवन उखाड़ देने में ।
 साँस जब थी उखड़ उखड़ जाती ॥

जाय जूआ बुरा उतर जिस से ।
 जो न करते रहे वही धंधे ॥
 तो हमें बैल ही बनाते हैं ।
 बैल कैसे उठे उठे कंधे ॥

वह सुधरता तो सुधरता किस तरह ।
 देश की सुध ही नहीं जब ली गई ॥
 जातिहित की बात तब कैसे सुनें ।
 कान में जब डाल उँगली दी गई ॥

जो हथेली पर लिये ही सिर फिरे ।
 टालने को जाति के सिर की बला ॥
 देख उन पर दाँत हम को पीसते ।
 कौन दाँतों में न उँगली दे चला ॥

तब नहीं कैसे हमारी गत बने ।
 जब कि गत हम आप बनवाते रहे ॥
 पत रहे तो किस तरह से पत रहे ।
 जब चपत हर बात में खाते रहे ॥

साँसतें तब क्यों नहीं सहनी पड़ें ।
 जब उन्हें चुपचाप हम ने हैं सहे ॥
 हाथ कैसे तब न बाँधे जाँयगे ।
 जब खड़े हम हाथ बाँधे ही रहे ॥

विपत्ति के बादल

१०५

तब न मनमानियाँ सहेंगे क्यों ।
 हाथ में जब कि मन मरे के हैं ॥
 तब न बेकार जाँयगे वन क्यों ।
 जब बिके हाथ दूसरे के हैं ॥

हो सके दुख - सवाल हल कैसे ।
 है अगर छूटता न छल मेरा ॥
 देख कर जाति को दहल जाते ।
 कब कलेजा गया दहल मेरा ॥

रंग उड़ जाय क्यों न सुख-मुख का ।
 क्यों फरेरा उड़े न दुख तेरा ॥
 बेतरह जाति जी उड़ा देखे ।
 जो कलेजा उड़ा नहीं मेरा ॥

तब दुखी - जाति - दुख टले कैसे ।
 जब न दुख देख झोंक से झपटे ॥
 जान बेजान में पड़े कैसे ।
 जब दिलोजान से नहीं लपटे ॥

तोड़ लाते उचक तरैया को ।
 औ घड़े में समुद्र को भरते ॥
 कौन सा काम कर नहीं पाते ।
 हम दिलोजान से अगर करते ॥

देस को देख कर फला फूला ।
 कब खिला फूल की तरह मुखड़ा ॥
 जाति को कब हरा भरा पाकर ।
 दिल हमारा उमड़ उमड़ उमड़ा ॥

जान पर खेल जो नहीं जाते ।
 किस तरह नौक झोंक तो निपटे ॥
 छूटती जाति - जान तो कैसे ।
 लोग जी जान से न जो लिपटे ॥

किस तरह कामयाब तो बनते ।
 किस तरह हों निहाल, भाग जगे ॥
 लाग के साथ काम करने में ।
 लोग जी जान से अगर न लगे ॥

साधते साधते गये थक हम ।
 जातिहित साधना मगर न सधी ॥
 बाँधते बाँधते जनम बीता ।
 देसहित के लिये कमर न बाँधी ॥

क्यों खटकते हमें बुरे काँटे ।
 क्यों लगे चाट गाँठ का खोते ॥
 सब बुरी हाट ठाट वाटों से ।
 पाँव मेरे अगर हटे होते ॥

विपत्ति के बादल

१०७

देख ऊँचे समाज को चढ़ते ।
 हैं हमीं आँख मीचने वाले ॥
 पड़ बुरी खींचतान पचड़ों में ।
 हैं हमीं पाँव खींचने वाले ॥

तो पड़े क्यों पहाड़ सिर पर गिर ।
 नँह अगर दुख रहे सुखी के हों ॥
 किस लिये तो हमें न, दुख भी हो ।
 पाँव दुखते अगर दुखी के हों ॥

हैं गये तन बिन बहुत, सब छिन गया ।
 लोग काँटे हैं घरों में वो रहे ॥
 है मुसीबत का नगारा बज रहा ।
 पाँव पर रख पाँव हम हैं सो रहे ॥

भर गया पोर पोर में औगुन ।
 नाम हम में न रह गया गुन का ॥
 जो गला चाँप चाँप देते हैं ।
 पाँव हम चाँप हैं रहे उन का ॥

कर सके देस जाति का न भला ।
 चल भले भाव के भले रथ में ॥
 तज धरम के धुरे अधमीं बन ।
 पाँव है धर रहे बुरे पथ में ॥

फूट

लुट गये पिट उठे गये पटके ।
 आँख के भी विलट गये कोये ॥
 पड़ बुरी फूट के बखेड़े में ।
 कब नहीं फूट फूट कर रोये ॥

बढ़ सके मेल जोल तब कैसे ।
 बच सके जब न छूट पंजे से ॥
 क्यों पड़े टूट में न, जब नल्लें ।
 छूट पाई न फूट-पंजे से ॥

खुल न पाई जाति-आँखें आज भी ।
 दिन व दिन बल बेतरह हैं घट रहा ॥
 लूट देखे माल की हैं लट रहे ।
 फूट देखे हैं कलेजा फट रहा ॥

जो हमें सूझता, समझ होती ।
 बैर वकवाद में न दिन कटता ॥
 आँख होती अगर न फूट गई ।
 देख कर फूट क्यों न दिल फटता ॥

फूट जब फूट फूट पड़ती है ।
 प्रीति की गाँठ जोड़ते क्या हैं ॥
 जब मरोड़ी न ऐंठ की गरदन ।
 मूँछ तब हम मरोड़ते क्या हैं ॥

भारी भूल

सूझ औ बूझ के सबव, जिस के ।
 हाथ में जाति के रहे लेखे ॥
 है बड़ी भूल और बेसमझी ।
 जो कड़ी आँख से उसे देखे ॥

वे हमारे ढंग, वे अच्छे चलन ।
 आज भी जिन की वदौलत हैं वसे ॥
 दैव टेढ़े क्यों न होंगे जो उन्हें ।
 देखते हैं लोग टेढ़ी आँख से ॥

हिन्दुओं पर दूट पड़ने के लिये ।
 मौत का वह कान नित है भर रहा ॥
 खोद देने के लिये जड़ जाति की ।
 जो कि है सिरतोड़ कोशिश कर रहा ॥

जी सके जिस रहन सहन के बल ।
 चाहिये वह न चित्त से उतरे ॥
 कर कतरव्योंत बेतरह उस में ।
 क्यों भला जाति का गला कतरे ॥

एका की कमी

धुन हमारी अलग रही बँधती ।
 एक ही राग कब हमें भाया ॥
 जाति रँग में ढले पदों को भी ।
 कब गले से गला मिला गाया ॥

दम सुनाने में नहीं जिस के रहा ।
 है नहीं उस की सुनी जाती कहीं ॥
 खोलते तो कान कैसे खोलते ।
 एक सुर से बोलते ही जब नहीं ॥
 है समाई न एक धुन अब तक ।
 दिल हिले तो भला हिले कैसे ॥
 कुछ न कुछ है कसर मिलाने में ।
 सुर मिले तो भला मिले कैसे ॥

तो समय पर चूकते हम किस तरह ।
 जो समय की रंगतें पहचानते ॥
 कौन सुर से सुर मिलाता तब नहीं ।
 सुर अगर सुर से मिलाना जानते ॥

बात कहते अगर नहीं बनती ।
 तो भला था यही कि चुप रहते ॥
 सुर सदा है अलग अलग रहता ।
 एक सुर से कभी नहीं कहते ॥

विपत्ति के बादल

१११

बेताबी

अब तनिक भी न ताव है तन में ।
 किस तरह दुख समुद्र में पैठें ॥
 बेतरह काँपता कलेजा है ।
 क्यों कलेजा न थाम कर बैठें ॥

बेतरह वह लगा धुँआ देने ।
 चाहता है जहान जल जाया ॥
 मुदतें हो गईं सुलगते ही ।
 अब कलेजा न जाय सुलगाया ॥

है टपक बेताव करती बेतरह ।
 हैं न हाथों से बला के छूटते ॥
 टूटते पाके पके जी के नहीं ।
 हैं नहीं दिल के फफोले फूटते ॥

जाति जिस से भूल चूकों में फँसी ।
 था भला वह भाव खलता ही नहीं ॥
 क्या करें किस भाँति बहलायें उसे ।
 दिल हमारा तो बहलता ही नहीं ॥

अब हमारा वहीं ठिकाना है ।
 है जहाँ ठीक ठीक दुख देरा ॥
 तब कहें बात क्यों ठिकाने की ।
 है ठिकाने न जब कि दिल मेरा ॥

११२

चुभते चौपदे

जो रहा है वीत दिल है जानता ।
 है न इतनी ताव जो आहें भरें ॥
 जब समय ने है पकड़ पकड़ी बुरी ।
 तब न दिल पकड़े फिरे तो क्या करें ॥

बेवसी

बेवसी, हो सदा बुरा तेरा ।
 यह कहाँ ताव जो करें चूँ तक ॥
 हम भला कान क्या हिलायें ।
 कान पर रेंगती नहीं जूँ तक ॥

देसहित का काम करने के समय ।
 हम न योही डालते कंधे रहे ॥
 झंझटों में डाल डायोडोल कर ।
 पेट के धंधे किये अंधे रहे ॥

लाभ गहरा किस तरह तो हो सके ।
 हाथ लगा पाया अगर गहरा नहीं ॥
 हम भला कैसे ठहर पाते वहाँ ।
 पाँव ठहराये जहाँ ठहरा नहीं ॥

विपत्ति के बादल

११३

छूट तो पीछा सका दुख से कहाँ ।
तो मुसीबत है कहाँ पीछे हटी ॥
हाथ की जो हथकड़ी टूटी नहीं ।
जो न वेड़ी पाँव की काटे कटी ॥

गड़ गये, सौ सौ मनों के वन गये ।
अड़ गये, हैं राह पर आये कहाँ ॥
पैठने को जातिहित के पैँठ में ।
ए हमारे पाँव उठ पाये कहाँ ॥

और दूभर हुआ हमें जीना ।
मन, थके मार, मर नहीं पाता ॥
हैं उतरते अकड़ अखाड़े में ।
पैतरा पाँव भर नहीं पाता ॥

जातिहित पथ न देख तै होते ।
रुचि बहुत बार बार घवराई ॥
राह भारी हुए भर आया जी ।
भर गये पाँव, आँख भर आई ॥

तंग है कर रही जगह तंगी ।
हैं वखेड़े तमाम तो 'तै' से ॥
वे समेटे सिमिट नहीं पाते ।
पाँव लेवें समेट हम कैसे ॥

फैलते देख पाँव औरों के ।
 वे भला क्यों नहीं अकड़ जाते ॥
 चाहता हूँ सिकोड़ लेना मैं ।
 पाँव मेरे सिकुड़ नहीं पाते ॥

वेवसी बाँट में पड़ी जब है ।
 जायगी नुच न किस लिये वोटी ॥
 चोट पर चोट तब न क्यों होगी ।
 जब दबी पाँव के तले चांटी ॥

हर तरह कर बुराइयाँ अपनी ।
 वे कलें और के भले की हैं ॥
 जातियाँ बेतरह दबी कुचली ।
 चींटियाँ पाँव के तले की हैं ॥

थक गये बल कर, निकल पाये नहीं ।
 जा रहे हैं और वे नीचे धँसे ॥
 दिल दलक कर बेतरह दलके न क्यों ।
 हैं हमारे पाँव दलदल में फँसे ॥

छूतछात

जो बहुत दुख पा चुके हैं आज तक ।
 कम न दुख होगा उन्हें अब दुख दिये ॥
 सब तरह से जो बेचारे हैं दवे ।
 मत उन्हें आँखें दवा कर देखिये ॥

छूत क्या है, अछूत लोगों में ।
 क्यों न उन का अछूतपन लिखिये ॥
 हाथ रखिये अनाथ के सिर पर ।
 कान पर हाथ आप मत रखिये ॥

भूत सिर पर है बड़प्पन का चढ़ा ।
 छल रही है छूत जैसी बड़ बला ॥
 कर बुरी बेकार बेजा ऐंठ क्यों ।
 जाति का हम ऐंठ देते हैं गला ॥

बाहरी जातपाँत के पचड़े ।
 भीतरी छूतछात की साधें ॥
 हैं हमें बाँध बेतरह देतीं ।
 क्यों उन्हें जाति के गले बाँधें ॥

है कहीं जाती कहीं पर दानवी ।
 पुज रही है वह बनी देवी कहीं ॥
 आज छूआछूत - चिन्ता से छिदे ।
 कौन सी छाती हुई छलनी नहीं ॥

११६

चुभते चौपदे

तव सके छूट क्यों छिछोरापन ।
 सूझ जब छाँह छू नहीं पाती ॥
 क्यों मिटे छूतछात के झगड़े ।
 जब छिले दिल छिली नहीं छाती ॥

आदमी हैं, आदमीयत है भली ।
 बात यह कोई कहे इतरा नहीं ॥
 छेद छाती में अच्छूतों के हुए ।
 जो अच्छूता जी गया छितरा नहीं ॥

तब न छुटकारा दुखों से पा सके ।
 हम छोटाई छूत से छूटे न जब ॥
 एक सा सब छूटना होता नहीं ।
 छूटने से पेट छूटा पेट कब ॥

वे अच्छूता हमें न छोड़ेंगे ।
 छूत से हैं जिन्हें नहीं छूते ॥
 हैं दवे पाँव के तले तो क्या ।
 क्या हमें काटते नहीं जूते ॥

क्या उसी से कढ़ी न गंगा हैं ।
 बल उसी के न क्या पुजे बावन ॥
 हैं अपावन अच्छूत सब कैसे ।
 है भला कौन पाँव सा पावन ॥

नाड़ी की टटोल

हमारे मनचले

सब तरह की सूझ चूल्हे में पड़े ।
जाँय जल उन की कमाई के टके ॥
जब भरम की दूह ली पोटी गई ।
लाज चोटी की नहीं जब रख सके ॥

लुट गई मरजाद पत पानी गया ।
पीढ़ियों की पालिसी चौपट गई ॥
चोट खा वह ठाट चकनाचूर हो ।
चाट से जिस की कि चोटी कट गई ॥

लग गई यूरोपियन रंगत भली ।
क्यों बनें हिन्दी गधे भूँका करें ॥
साहवीयत में रहेंगे मस्त हम ।
थूकते हैं लोग तो थूका करें ॥

सिरधरे या सिरफिरे

लुट गया कोई बला से लुट गया ।
 कुल नहीं तो गाँठ का उनकी गिरा ॥
 है सुधारों की वहाँ पर आस क्या ।
 हो जहाँ पर सिरधरों का सिर फिरा ॥

बढ़ गये मान भूख तंग बने ।
 आप का रह गया न वह चेहरा ॥
 देखिये अब उतर न जाय कहीं ।
 आप के सिर बँधा सुजस सेहरा ॥

तब भला कैसे न हम मिट जायँगे ।
 मनचले कैसे न तब हम को ठगें ॥
 फिर गये सिर जब हमारे सिर धरे ।
 बात वे - सिर - पैर की कहने लगें ॥

हैं हमारे पंथ जो प्यारे बड़े ।
 हैं बुरे काँटे उन्हीं में वो रहे ॥
 देख कर के सिरधरों का सिर फिरा ।
 हैं कलेजा थाम कर हम रो रहे ॥

ढांगिये

ढोंग रच रच ढकोसले फैला ।
जब उन्होंने कि जाति घर घाले ॥
तब रखें पाँव फूँक फूँक न क्यों ।
और के कान फूँकने वाले ॥

तुम भली चाह को समझ लो तिल ।
ताल होगा उसे बढ़ा लेना ॥
ताल तिल को न जो बना पाया ।
काम आया न तो तिलक देना ॥

दुख सहे, पर दूसरों का हित करे ।
वह रहा घिसता सदा ही इस लिये ॥
यह मरम जी में समाया जो नहीं ।
तो भला चन्दन लगाया किस लिये ॥

इस तरह के हैं कई टीके बने ।
जो कि तन के रोग देते हैं भगा ॥
जो न मन के रोग का टीका बना ।
तो हुआ फिर लाभ क्या टीका लगा ॥

सोहते दिन रात साथे पर रहे ।
देखता हूँ बाल भी अब तो पके ॥
जो न केसर की कियारी जी बना ।
तो न केसर के तिलक कुल कर सके ॥

१२०

चुभते चौपदे

जो न हरि के प्यार का रँग चढ़ सका ।
 जो न चाही लालियों का सँग रहा ॥
 जो चिरोरी चाह की होती रही ।
 तो न रोरी के तिलक का रँग रहा ॥

छाप भलमंसी लगा करके छला ।
 दिन दहाड़े की ठगी धोखा दिया ॥
 नटखटी का रंग जो उतरा नहीं ।
 तो किसी ने क्या लगा टीका लिया ॥

जो न उस में झलक दिखायेंगी ।
 सब भली चाहतें ठिकाने से ॥
 आप के तो खिले हुए मुँह की ।
 'श्री' रहेगी न 'श्री' लगाने से ॥

जब कि चोटें हों धरम पर चल रही ।
 औ वनावट ने उसे हो ढक लिया ॥
 तान ली तब आप ने लम्बी अगर ।
 तो तिलक लम्बा लगा कर क्या किया ॥

तीन गुन के न जो तिकट टूटे ।
 तुम रहे जो तिलोक से ऐंठे ॥
 तो तमाशा तुम्हें बनाने को ।
 हैं तिकोने तिलक तुले बैठे ॥

नाड़ी की टटोल

१२१

धूर्त हैं, गोल गोल बातों में ।
 जो धरम का मरम छिपाते हैं ॥
 तुम करो गोलमाल मत ऐसा ।
 नित तिलक गोल यह बताते हैं ॥

देख कर पाँव धर्म का उखड़ा ।
 भूल कर भूख प्यास बाँध कमर ॥
 तू खड़ा रात दिन अगर न रहा ।
 क्या किया तो खड़ा तिलक दे कर ॥

जो न तिरछी आँख से तिरछे रहे ।
 कुल न पाया तो तिलक तिरछे दिये ॥
 धर्म के आड़े न आये जो कभी ।
 तो तिलक आड़े लगाये किस लिये ॥

छोड़ करके सजी सरग की सेज ।
 तू गया आग में नरक की लेट ॥
 धर्म की ओर फेर करके पीठ ।
 दे तिलक पालता रहा जो पेट ॥

क्या किया दे कर बड़े उजले तिलक ।
 जो रहा मन मैल में सब दिन सना ॥
 जो न जी में छोट परहित की पड़ी ।
 तो हुआ क्या छोट माथे को बना ॥

१२२

चुभते चौपदे

कुछ न छूआछूत से वच कर हुआ ।
 किस लिये खटराग फैलाये बड़े ॥
 छूतवाले वन कपट की छूत से ।
 जब तिलक पर लोभ के धब्बे पड़े ॥

जो करें पार और की नावें ।
 हैं भँवर के वही पड़े पाले ॥
 फूँकते कान क्यों नहीं अपना ।
 और के कान फूँकनेवाले ॥

हमारे साधू संत

और की पीर जो न जान सके ।
 वे जती हैं न हैं बड़े ढोंगी ॥
 कान जिन के फटे न परदुख सुन ।
 वे कभी हैं न कनफटे जोगी ॥

कौन हैं रंग ढंग से लें सोच ।
 संत हैं या कि संतपन के काल ॥
 राख तन पर मले चढ़ाये भंग ।
 लाल आँखें किये बढ़ाये बाल ॥

नाड़ी की टटोल

१२३

तब रहे धूल फाँकते तो क्या ।
 देह में राख जब कि दी समवा ॥
 किस लिये आप तब कमायें वे ।
 बाल को जब दिया गया कमवा ॥

भूल में ही हो पड़े भगवा पहन ।
 जो भुलावों से नहीं अब लों भगे ॥
 जो सकी जी से न रंगीनी निकल ।
 रह सकेगा रँग न तो माथा रँगें ॥

और दुनिया चिमट गई इन को ।
 संत का मन का रोकना देखो ॥
 इन लँगोटी भभूतवालों का ।
 आँख में धूल झोंकना देखो ॥

धूल दे पाँव की टका ऎंठे ।
 धूतपन को भभूत दे पाले ॥
 धूल में संतपन मिला करके ।
 संत क्यों धूल आँख में डाले ॥

तंगियों के बुरे गढ़े में गिर ।
 साधुओं का गरेरना देखो ॥
 जो कि भरते हैं तारने का दम ।
 उन का आँखें तरेरना देखो ॥

१२४

चुभते चौपदे

घर रहे पर सुध नहीं घर की रही ।
 अब लगे ठगने रमा करके धुई ॥
 बाहरी आँखें गई पहले रहीं ।
 भीतरी आँखें भी अब अंधी हुई ॥

किस लिये माला हिलाते तब रहे ।
 माल पर ही जब जमी आँखें रहीं ॥
 तब रहे चन्दन लगाते किस लिये ।
 जब कि मुँह में लग सका चन्दन नहीं ॥

वन गये जब संत तब तज चाहते ।
 संतपन चित को सिखाना चाहिये ॥
 जो दिखावों में फँसे अब भी रहे ।
 तो न तुम को मुँह दिखाना चाहिये ॥

मान के अरमान जी में थे भरे ।
 संत बनने को मरे जाते रहे ॥
 चाह थी लाली रहे मुँह की बनी ।
 बेतरह मुँह की मगर खाते रहे ॥

दूसरों के लिये त्रिके जो हैं ।
 वे करेंगे न झोल की बातें ॥
 मोल कैसे नहीं घटायेंगी ।
 संत की मोल जोल की बातें ॥

नाड़ी की टटोल

१२५

जब चिलम जगती रही तब ज्ञान की ।
 जोत न्यारी क्यों न जगती कम रहे ॥
 नाक में दम क्यों रहे दम का न तब ।
 जब कि दम पर दम लगाते दम रहे ॥

फँस गये जब कि चाह-फंदे में ।
 नेह नाते रहे छुड़ाते क्या ॥
 लग गई पूँछ पिछलगों की जब ।
 मूँछ को तब रहे मुड़ाते क्या ॥

नाम के उन साधुओं के सामने ।
 आयु जिन की दाम के पीछे चुकी ॥
 किस तरह से आप झुक जायें भला ।
 जब झुकाये भी नहीं गर्दन झुकी ॥

छोड़ घर-बार किस लिये बैठे ।
 दूर जी से न जो हुई ममता ॥
 तो रमाये भभूत क्या होगा ।
 जो रहा मन न राम में रमता ॥

क्यों खुले भी न आँख खुल पाई ।
 किस लिये चेत कर नहीं चेते ॥
 लोग क्यों संत-पंथ-पंथी हो ।
 पाँव हैं पाप-पंथ में देते ॥

कसौटी

देखना है अगर निकम्मापन ।
तो हमें आँख खोल कर देखो ॥
हैं हमीं टालटूल के पुतले ।
जी हमारा टटोल कर देखो ॥

टाट कैसे नहीं उलट जाता ।
जब बुरी चाट के बने चेरे ॥
दिन पड़े खाट पर बिताते हैं ।
काहिली बाँट में पड़ी मेरे ॥

कायों का है वहाँ पर जमघटा ।
था जहाँ पर वीर का जमता परा ॥
सूर हम में अब उपजते ही नहीं ।
सूरपन है सूर लोगों में भरा ॥

जाति आँखों की बड़ी अकसीर को ।
हैं गया बीता समझते राख से ॥
देखते हम आँख भर कर क्या उसे ।
देख सकते हैं न फूटी आँख से ॥

क्यों बला में न बोलियाँ पड़तीं ।
जब बने जान वृझ कर तुतले ॥
फूट पड़ती न बाँ विपद कैसे ।
हैं जहाँ धैर फूट के पुतले ॥

नाड़ी की टटोल

१२७

तब बला में न किस तरह फँसते ।
जब बला टाल ही नहीं पाते ॥
हो सकेगा उबार तब कैसे ।
जब रहे बार बार उकताते ॥

बेहतरी किस तरह हिली रहती ।
जब रहे काहिली दिखाते हम ॥
भूल कैसे न तब भला होती ।
जब रहे भूल भूल जाते हम ॥

किस तरह काम हो सके कोई ।
जब कि हैं काम कर नहीं पाते ॥
गुथियाँ किस तरह सुलझ सकतीं ।
जब रहे हम उलझ उलझ जाते ॥

हैं अगर देखभाल कर सकते ।
क्यों नहीं देखभाल की जाती ॥
तब भला किस तरह भला होगा ।
जब भली बात ही नहीं भाती ॥

ढंग मन मार बैठ रहने का ।
है गया रोम रोम में रम सा ॥
छूट पाई लतें न आलस की ।
है भला कौन आलसी हम सा ॥

१२८

चुभते चौपदे

परख

खोट कैसे न खूँट में बँधती ।
 मन गया है खुटाइयों में सन ॥
 वान क्यों काटकूट की न पड़े ।
 है भरा कूट कूट पाजीपन ॥

जब पड़ी वान आग बोन की ।
 आग कैसे भला नहीं वोता ॥
 मिल सका ढंग ढंगवालों में ।
 ढंग वेढंग में नहीं होता ॥

जूठ खाना जिसे रहा रुचता ।
 किस लिये वह न खायगा जूठा ॥
 है उसे भूठ बोलना भाता ।
 बोलता भूठ क्यों नहीं भूठा ॥

जा रही है लाज तो जाये चली ।
 लाज जाने से भला वह कब डरा ॥
 घट रहा है मान तो घटता रहे ।
 है निघरघटपन निघरघट में भरा ॥

चूल से चूल हैं मिला देते ।
 रंगतें ढंग से बदलते हैं ॥
 चाल चालाकियाँ भरी कितनी ।
 कब न चालाक लोग चलते हैं ॥

नाड़ी की टटोल

१२९

पास तब कैसे फटक पाती समझ ।
जब कि जी नासमझियों में ही सने ॥
तब गले कैसे न उल्लूपन पड़े ।
उल्लूओं में बैठ जब उल्लू बने ॥

किस तरह वेपेव कोई बन सके ।
वेतरह हैं ऐव पीछे जब लगे ॥
कम नहीं उल्लू कहाना ही रहा ।
काठ के उल्लू कहाने अब लगे ॥

बात बतालाई सुनें, समझें, करें ।
कर न वेसमझी समझ की जड़ खनें ॥
जो बदा है क्यों बदा मानें उसे ।
हम न बोदापन दिखा बोदे बनें ॥

बाल की खाल काढ़ खल पन कर ।
खल किसे वेतरह नहीं खलते ॥
चाल चल छील छील बातों को ।
छल छली कर किसे नहीं छलते ॥

पेच भर पेच पाच करने में ।
क्यों सभी का न सिर धरा होगा ॥
है भरी काट पीट रग रग में ।
क्यों न कपटी कपट भरा होगा ॥

१३०

चुभते चौपदे

वे और हम

चाहते हैं यह तरैया तोड़ लें।
 बेतरह मुँह की मगर हैं खा रहे ॥
 हैं उचक कर हम सरग छूने चले।
 पर रसातल को चले हैं जा रहे ॥

क्यों सुझाये भी नहीं है सूझता।
 बीज हैं बरवादियों के वो गये ॥
 क्यों अँधेरा आँख पर है छा गया।
 किस लिये हम लोग अंधे हो गये ॥

एक है जाति के लिये जीता।
 दूसरा जाति लग नहीं लगता ॥
 एक है हो रहा सजग दिन दिन।
 दूसरा जाग कर नहीं जगता ॥

हैं लट्ट हम यूनिटी पर हो रहे।
 और वह लट बेतरह है पिट रही ॥
 सुध गँवा सारी हमारी जाति अब।
 है हमारे ही मिटाये मिट रही ॥

जाति जीतें सुन उमग हैं वे रहे।
 जाति - दुखड़े देख हम ऊबे नहीं ॥
 आज दिन सूबे चला हैं वे रहे।
 हैं हमारे पास मनसूबे नहीं ॥

नाड़ी की टटोल

१३१

जाति अपनी सँभालते हैं वे ।
हम नहीं हैं सँभाल सकते घर ॥
क्या चले साथ दौड़ने उन के ।
जो कि हैं उड़ रहे लगा कर पर ॥

क्यों न मुँह के बल गिरें खा ठोकरें ।
छा अँधेरा है गया आँखों तले ॥
हो न पाये पाँव पर अपने खड़े ।
साथ देने चालवालों का चले ॥

लुट रहा है घर, सगे हैं पिट रहे ।
खोलते मुँह बेतरह हैं डर रहे ॥
मौत के मुँह में चले हैं जा रहे ।
हैं मगर हम दूसरों पर मर रहे ॥

दौड़ उन की है विराने देस तक ।
घूम फिर जब हम रहे तब घर रहे ॥
हम छलाँगें मार हैं पाते नहीं ।
वह छलाँगें हैं छगूनी भर रहे ॥

वह कहीं हो पर गले का हार है ।
इस तरह वे जाति-रँग में हैं रँगें ॥
रंगतें इतनी हमारी हैं बुरी ।
हैं सगे भी बन नहीं सकते सगे ॥

१३२

घुमते चौपदे

है पसीना जाति का गिरता जहाँ ।
 वे वहाँ अपना गिराते हैं लहू ॥
 जाति-लोहू चूस लेने के लिये ।
 कब नहीं हम जिन्द बनते हूवहू ॥

जाति-दुख से वे दुखी हैं हो रहे ।
 क्यों न वह हो दूर देसों में बसी ॥
 देख कर भी देख हम पाते नहीं ।
 जा रही है जाति दलदल में धँसी ॥

बावलों जैसा बना उन को दिया ।
 दूर से आ जाति-दुख के नाम ने ॥
 आँख में उतरा नहीं मेरे लहू ।
 जाति का होता लहू है सामने ॥

जाति को उँचा उठाने के लिये ।
 बाग अपनी कब न वे खींचे रहे ॥
 नीच बन आँखें बहुत नीची किये ।
 हम गिराते जाति को नीचे रहे ॥

अठकपालीपन दिखा हैं वे रहे ।
 है अजब औंधी हमारी खोपड़ी ॥
 वे महल अपने खड़े हैं कर रहे ।
 हम रहे हैं फूँक अपनी झोपड़ी ॥

नाड़ी की टटोल

१३३

हों भले ही वे विदेशों में वसे ।
 प्यार में हैं जाति के पूरे सने ॥
 बात अपनी बेकसी की क्या कहें ।
 देस में भी हम विदेशी हैं बने ॥

धाक अपनी बाँध हैं जग में रहे ।
 एक झंडे के तले वे हो खड़े ॥
 फूट है घर में हमारे पड़ रही ।
 हैं लुढ़कते जा रहे धी के घड़े ॥

धर्म पर हो रहे निछावर हैं ।
 आज वे बोल बोल कर हुरे ॥
 हम अधूरे बुरे धुरे पकड़े ।
 धर्म के हैं उड़ा रहे धुरे ॥

क्यों न हों बहु देस में फैले हुए ।
 हैं मगर वे एक बंधन में बँधे ॥
 साध रहते देस में हम से नहीं ।
 एकता के मंत्र साधे से सधे ॥

दूसरों की जड़ जमाने के लिये ।
 क्यों बहँक कर आप अपनी जड़ खनें ॥
 हम नहीं कहते कि लोहा लोग लें ।
 पर न चुम्बक के लिये लोहा बनें ॥

पोल

दूसरे वीर वन भले ही लें ।
 वीरता तो हमीं दिखाते हैं ॥
 हम उड़ाते अवीर हैं अड़ कर ।
 और बढ़ कर कयीर गाते हैं ॥

मान मरजाद है मरी जाती ।
 आवरू का निकल रहा है दम ॥
 भाँड़ भड़वे वनें न तब कैसे ।
 जब कि गाने लगे भड़ौवे हम ॥

भाव के रसभरे कलेजे में ।
 हैं सुरुचि की जहाँ वहीं धारें ॥
 गालियों से भरी, बुरी, गंदी ।
 होलियाँ गा न गोलियाँ मारें ॥

जाति का मान रह सका जिन से ।
 मान उन का कभी न कर दें कम ॥
 कर धमा चौकड़ी भली रुचि से ।
 क्यों मचा दें धमार गा ऊधम ॥

नाड़ी की टटोल

१३५

मोड़ लें मुँह न आदमीयत से ।
 तोड़ देवें न ढंग का तागा ॥
 बात यह कान से सुनें रसिया ।
 नास रस का करें न 'रसिया' गा ॥

बेसुधे इतने न बन जावें कभी ।
 जो बुरा धब्बा हमें देवे लगा ॥
 किस लिये हम ताल पर नाचा करें ।
 चाल बिगड़े क्यों बुरे चौताल गा ॥

दल वहँक जाय दिल-चलों का जो ।
 तो न वरसें उमड़ घुमड़ बादल ॥
 जाय वह मुँह तुरंत जल, जिस में ।
 गा बुरी कजलियाँ लगे काजल ॥

मा, बहन, बेटियाँ निलज न वनें ।
 इस तरह से हमें न लजवावें ॥
 हैं लगातार तालियाँ बजती ।
 गालियाँ गा न गालियाँ खावें ॥

१३६

चुभते चौपदे

जाति राह के रोड़े

ईसवी पंजा

आँख की पट्टी नहीं तब भी खुली ।
 बिछ रहे हैं जाल अब भी नित नये ॥
 क्या कहें ईसाइयों की चाल को ।
 लाल पंजे से निकल लाखों गये ॥

तब सुनायें जली कटी तो क्या ।
 जब पड़े हैं कड़े शिकंजे में ॥
 आ गए लोग जब लगा घर में ।
 आ गए हैं मसीह - पंजे में ॥

आज हम जिन के घटायें हैं घटे ।
 बढ़ गई जिन के बढ़ाये बेकसी ॥
 बात यह अब भी वसी जी में कहाँ ।
 जाति पंजे में उन्हीं के है फँसी ॥

जो हमारे रत्न ही हैं लुटते ।
 जो कि हैं ढलका रहे घी का घड़ा ॥
 ठेस जी को लग सकी यह सोच कर ।
 देस पंजे में उन्हीं के है पड़ा ॥

जाति राह के रोड़े

१३७

हैं कलेजा नुच रहा वेचैन हूँ ।
 हो रहे हैं रोंगटे फिर फिर खड़े ॥
 हम निकालें तो निकालें किस तरह ।
 बेतरह ईसाइयत पंजे गड़े ॥

शेर जैसे क्यों न ईसाई बनें ।
 हिन्दियों से मेमने क्या हैं कहीं ॥
 पा सदी यह बीसवीं इस हिन्द में ।
 फैलता क्यों ईसवी पंजा नहीं ॥

डाल कर ईसाइयत के जाल में ।
 तब भला भौहें चढ़ाते क्यों न वे ॥
 जी रहा ईसाइयों का जब बढ़ा ।
 तब भला पंजा बढ़ाते क्यों न वे ॥

घाव पर हैं घाव गहरे कर रहे ।
 चुभ रहे हैं वे बहुत बेढव फँसे ॥
 दुख रहे हैं और दुख हैं दे रहे ।
 बेतरह हैं ईसवी पंजे धँसे ॥

हो गये हैं शेर वे, तो हर तरह ।
 क्यों न देवेंगे हमें बेकार कर ॥
 क्या मसीहाई मसीही करेंगे ।
 मार देंगे और पंजे मार कर ॥

१३८

चुभते चौपदे

ताली

तो भलाई क्या हुई रगड़े वड़े ।
 नींव झगड़े की अगर डाली गई ॥
 हाथ के तोते किसी के जब उड़े ।
 तब बजाई किस लिये ताली गई ॥

भूठ के सामने झुके सिर क्यों ।
 फूल से लोग क्यों उसे न सजें ॥
 सच कहें, क्यों न गालियाँ खायें ।
 तालियाँ क्यों न बार बार बजें ॥

प्यालियाँ जो हैं बड़े आनन्द की ।
 डालियाँ वे क्यों कपट छल की बनें ॥
 भर बहुत मैले मनों के मैल से ।
 तालियाँ क्यों नालियाँ मल की बनें ॥

हितभरी बात जग-हित की सुन ।
 भर गई लोक-भक्ति की थाली ॥
 सज उठी फूल से सजी पगड़ी ।
 बज उठी धूम धाम से ताली ॥

धूम से वेढंगपन है चल रहा ।
 हैं नहीं बेहूदगी आँखें खुली ॥
 तोड़ देने के लिये हित की कमर ।
 तालियों की तड़तड़ाहट है तुली ॥

जाति राह के रोड़े

१३९

डालियाँ अब वे न फूलों की रहीं ।
 भर गई उन की धुनों में गालियाँ ॥
 तूल हैं तलबेलियों को दे रही ।
 तौल कर वजती नहीं अब तालियाँ ॥

तब भला वह किस लिये वजती रही ।
 लोग उसको जब न रस-डाली कहें ॥
 खोल पाई जब न ताला प्यार का ।
 तब उसे हम किस तरह ताली कहें ॥

देस को, जाति को समाजों को ।
 क्यों कलह - फूल से सजाते हैं ॥
 लाग की बेलियों तले बैठे ।
 लोग क्यों तालियाँ बजाते हैं ॥

लाग से वे जल रहे हैं तो जलें ।
 क्यों जला घर सुन रहे हैं गालियाँ ॥
 जी जला कर जाति के सिरताज का ।
 क्यों जले तन हैं वजाते तालियाँ ॥

बेतुकेपन, वाँकपन बेहूदपन ।
 बैलपन को हैं किया करती हवा ॥
 हैं बलायें बावलेपन के लिये ।
 तालियाँ हैं वेदहलपन की दवा ॥

१४०

चुमते चौपदे

चेलियाँ औ सहेलियाँ दोनों ।
 बोलियों के सकल कला की हैं ॥
 रीझ की और खीझ आँखों की ।
 तालियाँ पुतलियाँ बला की हैं ॥

भर उमंगें बना दुगूना दिल ।
 रख बड़े मान साथ मुँह - लाली ॥
 बेखुली आँख खोल देती है ।
 बात तौली हुई तुली ताली ॥

वोट

वोट देते हैं टके की ओट में ।
 हैं सभाओं में बहुत ही ऐंठते ॥
 कुछ उठल्लू लोग ऐसे हैं कि जो ।
 हैं उठाते हाथ उठते बैठते ॥

वोट देने से उन्हें मतलब रहा ।
 एतवारों को न क्यों लेवें उठा ॥
 वे उठाते हाथ योंही हैं सदा ।
 क्यों न उन पर हाथ हम देवें उठा ॥

जाति राह के रोड़े

१४१

वोट देने का निकम्मा ढंग हो ।
 है उन्हें बेआबरू करता न कम ॥
 हैं उठाते तो उठायें हाथ वे ।
 क्यों उठा दें पकड़ कर हाथ हम ॥

वोट की क्या चोट लगती है नहीं ।
 क्यों कमीने बन कमाते हैं टका ॥
 नीचपन से जब लदा था बेतरह ।
 तब उठाये हाथ कैसे उठ सका ॥

वोट दें पर खोट से बचते रहें ।
 क्यों करें वह, लिम लगे जिसके किये ॥
 जब कि ऊपर मुँह न उठ सकता रहा ।
 हाथ ऊपर हैं उठाते किस लिये ॥

चालाक लोग

जी चुरायें, करें न हित जी से ।
 जाति को क्यों जवाब दें सूखे ॥
 नाम पाकर नमकहराम न हों ।
 नाम बेंचें न नाम के भूखे ॥

१४२

चुभते चौपदे

जो हितू वन बना बना बातें ।
जाति-हित के लिये गये वीछे ॥
वे करें हित न तो अहित न करें ।
हों न बदनाम नाम के पीछे ॥

वह रसातल क्यों चला जाता नहीं ।
देस - हित जिसकी बतोलों में सना ॥
जो बिगाड़े बात बिनती जाति की ।
बात रखने के लिये बातें बना ॥

क्यों थपेड़े उन्हें नहीं लगते ।
जो न थे वन वखेड़िये डरते ॥
जाति-हित के लिये खड़े हो कर ।
जो वखेड़े रहे खड़े करते ॥

जो भली राह है हमें भूली ।
तो बुरे पंथ में न पग देवें ॥
वन लुटेरे न जाति को लूटें ।
कर ठगी जाति को न ठग देवें ॥

कर दिखायें उसे कहें जो हम ।
जीभ मुँह में कभी नहीं दो हो ॥
है बुरी बात ढोंग बहुरंगी ।
देस - हित - रंग में रंगी जो हो ॥

आठ आठ आँसू

१४३

क्यों हमारी कपट - भरी करनी ।
जाति - सिर के लिये पसेरी हो ॥
देस - हित के लिये चले मचले ।
चाल भूचाल सी न मेरी हो ॥

आठ आठ आँसू

चार जाति

जो अजब जोत था जगा देता ।
जाति में जाति के वसेरे में ॥
देवता जो कि है धरातल का ।
क्यों पड़ा है वही अँधेरे में ॥

जो वहाँ अपना गिराती थी लहू ।
जाति का गिरता पसीना था जहाँ ॥
अब दिखा पड़ती सपूती वह नहीं ।
इन दिनों वह राजपूती है कहाँ ॥

जो बसा जाति को रही बसती ।
 देस में बाढ़ बीज जो बोवे ॥
 बँच कर नाम बेवसों सा बन ।
 वैस वह वैस किस लिये खोवे ॥

जिस जगह काँटा मिला बिखरा हुआ ।
 निज कलेजा थे बिछा देते वहाँ ॥
 जो कि सेवा पर निछावर हो गये ।
 आज दिन वे जाति - सेवक हैं कहाँ ॥

काँपता और थरथराता है ।
 है फिसलता कभी कभी, छिंकता ॥
 तब भला जाति हो खड़ी कैसे ।
 जब कि हैं पाँव ही नहीं टिकता ॥

कुछ अजब है नहीं, हमें रोटी ।
 पेट भर आज जो नहीं मिलती ॥
 तब भला किस तरह कमाई हो ।
 जाति की जाँघ जब कि है हिलती ॥

खुल सकें तो भला खुलें कैसे ।
 बेहतरी की रुकी हुई राहें ॥
 जाति को किस तरह निबाहें तब ।
 जब कि बेकार हो गई बाहें ॥

आठ आठ आँसू

१४५

वात न्यारी बहुत ठिकाने की ।
 दूर की सोच किस तरह पावे ॥
 किस तरह जाति तब न क्रूर बने ।
 जब कि सिर चूर चूर हो जावे ॥

क्यों न पड़ जाँय तब रगें ढीली ।
 क्यों भला सिर न घूम जाता हो ॥
 तब भला जाति - तन पले कैसे ।
 जब कि मुँह में न अन्न जाता हो ॥

क्यों न वहाँके सब सहे विगड़े बहुत ।
 क्यों नहीं सरबस गँवा जीते मरे ॥
 किस तरह से जाति तब सँभले भला ।
 वात वे-सिर-पैर की जब सिर करे ॥

चार नाते

चाहिये था सींचना जल बन जिसे ।
 तेल वह उस के लिये कैसे बने ॥
 तब भला हम क्यों न जायेंगे उजड़ ।
 जब कि जोड़ू ही हमारी जड़ खने ॥

१४६

चुभते चौपदे

घरनियाँ हैं सभी सुखों की जड़ ।
 रूठ सुख - सोत वे सुखायें क्यों ॥
 निज कलेजा निकाल देवें जो ।
 वे कलेजा कभी कँपायें क्यों ॥

भूल जायें न नेकियाँ सारी ।
 बाप के सब सलूक को सोचें ॥
 हो गईं रोटियाँ अगर महुँगी ।
 वेटियाँ तो न वोटियाँ नोचें ॥

वे पहन लें न, या पहन लेवें ।
 चूड़ियाँ किस तरह मरद पहनें ॥
 नेह - गहने अगर पसंद नहीं ।
 चौक पत्थर हनें न तो बहनें ॥

जो जिलायें उलझ न उलझायें ।
 और वेअदवियाँ न सिखलायें ॥
 वे मुआ दें हमें जनमते ही ।
 पर बलायें वनें न मातायें ॥

दूसरे मोड़ मुँह भले ही लें ।
 मा किसी की कभी न मुँह मोड़े ॥
 रंग बदले तमाम दुनिया का ।
 देवतापन न देवता छोड़े ॥

आठ आठ आँसू

१६७

जब बदी पर कमर कसे घरनी ।
 सुख फिरे किस तरह न कतराया ॥
 तब भला वह सँभल सके कैसे ।
 जब करे देह पर सितम साया ॥

मुँह सडुख ताक ताक बहनों का ।
 तो न नाते तमाम क्यों रोवें ॥
 चोर जी में अगर घुसे उन के ।
 जो सराबोर नेह में होवें ॥

हित करें जो वेदियाँ हित कर सकें ।
 नित मचा कर दुंद वे न दुचित करें ॥
 तब भला कैसे ठिकाने चित रहे ।
 जब हमें चित की पुतलियाँ चित करें ॥

हमारी देवियाँ

जातिकी, कुल की, धरम की, लाज की ।
 बेतरह ए ले रही हैं फवतियाँ ॥
 हैं लगाती ठोकरें मरजाद को ।
 देवियाँ हैं याकि ए हैं वीवियाँ ॥

चुभते चौपदे

हम उन्हें तब देवियाँ कैसे कहे ।
 बेतरह परिवार से जब तन गई ॥
 वीविआना ठाट है बतला रहा ।
 आज दिन वे वीवियाँ हैं बन गई ॥

चूस करके सब सल्लूकों का लहू ।
 नेह-साँसें चाव से गिनने लगीं ॥
 तब भला न मसान घर कैसे बने ।
 डायनें जब देवियाँ बनने लगीं ॥

क्या न है फेर यह समय का ही ।
 देवियाँ जाँय जो चुड़ैलें बन ॥
 नाम के साथ वे लिखें देवी ।
 जो रखें नाम को न देवीपन ॥

सब घरों को दें सरग जैसा बना ।
 लाल प्यारे देवतों जैसा जनें ॥
 अब रहे ऐसे हमारे दिन कहाँ ।
 देवियाँ जो देवियाँ सचमुच बनें ॥

निघरघट

आज दिन तो अनेक ऊँचों की ।
 रोटियाँ नाम वेंच हैं सिँकती ॥
 क्या कहें बात बेहयाई की ।
 हैं खुले आम बेटियाँ विकती ॥
 हैं कहीं बेढंगियाँ ऐसी नहीं ।
 हैं भला हम से कहाँ पर नीच नर ॥
 लूटते हैं सेंट में हमें सभी ।
 छूटते हैं खेत बेटी वेंच कर ॥

किस तरह हम को भला कुछ सूझता ।
 क्योंकि हम में आँख की ही है कमी ॥
 काठ के पुतले कहाँ हम से मिले ।
 वेंचते हैं आँख की पुतली हमीं ॥

कर मकर मन के मसोसों के बिना ।
 जो कभी दामाद को हैं मूसते ॥
 कुल बढ़ाई के लहू से हाथ रंग ।
 हैं लहू वे बेटियों का चूसते ॥

आज कितनी ही हमारी चाह पर ।
 बेटियाँ वहनें सभी हैं खो रही ॥
 क्या भला देंगे निछावर हम उन्हें ।
 आप ही वे हैं निछावर हो रही ॥

१५०

चुभते चौपदे

बेटियाँ वहनँ विकें धन के लिये ।
 भाव ऐसा क्यों किसी जी में जगे ॥
 जो लगा दे लात कुल की लाज को ।
 लत बुरी ऐसी न दौलत की लगे ॥

किस लिये तो पले न बेटि से ।
 जो दवा पाप - भार से तन हो ॥
 मान का मान तब रखे कैसे ।
 जब कि पामाल माल से मन हो ।

वेवायें

जाति का नास बेतरह न करें ।
 दें बना बेअसर न सेवायें ॥
 जो न बेहद उन्हें दवायें हम ।
 तो ववायें वनें न बेवायें ॥

थे उपज पाये दयासागर जहाँ ।
 अब निरे पत्थर उपजते हैं वहाँ ॥
 है कलेजा तो हमारे पास ही ।
 पास बेवों के कलेजा है कहाँ ॥

आठ आठ आँसू

१५१

मदे चाहें माल चाचा ही करें ।
 औरतें पीती रहेंगी माँड़ ही ॥
 क्यों न रँडुये व्याह कर लें बीसियों ।
 पर रहेगी राँड़ सब दिन राँड़ ही ॥

खीज बेवस और बेवों पर अवस ।
 हम गिरा देवें भले ही विजलियाँ ॥
 पर समझ लेवें किसी की भी सदा ।
 रह सकीं धी में न पाँचों उँगलियाँ ॥

हम नहीं आज भी समझ पाये ।
 जाति की किस तरह करें सेवा ॥
 हो बहुत वंस क्यों न बेवारिस ।
 जब कि बेवा बनी रहें बेवा ॥

जाति जिस से चल बसा है चाहती ।
 आज भी छूटीं कुचालें वे कहाँ ॥
 क्यों वहाँ होंगे न लाखों दुख खड़े ।
 लाखहा बेवा विलखती हों जहाँ ॥

जब कि बेवों का न बेड़ा पार कर ।
 बेसुधी की धार में हैं बह चुकी ॥
 आज दिन भी जाग जब सकती नहीं ।
 जाति जीती जागती तो रह चुकी ॥

१५२

चुभते चौपदे

क्यों न दुख पाँव तोड़ कर बैठे ।
 क्यों वहाँ हो न मौत की सेवा ॥
 एक दो क्या, जहाँ बहुत सी हों ।
 चार या पाँच साल की वेवा ॥

जब नहीं आवाद वेवायें हुई ।
 तब भला हम किस तरह आवाद हों ॥
 क्यों भला वरवाद होंवेंगे न हम ।
 वेटियाँ वहनँ अगर वरवाद हों ॥

किस तरह से जाति विगड़ेगी न तो ।
 जब कि वेवायें विगड़ती ही रहें ॥
 हृद हमारी बेहयाई की हुई ।
 जो कसाला वेटियाँ वहनँ सहें ॥

जाति कैसे भला न दूवेगी ।
 किस लिये वह न जाय दे खेवा ॥
 जब नहीं सालती कलेजे में ।
 चार औ पाँच साल की वेवा ॥

आज वेवा हिन्दुओं की हीन बन ।
 दूसरों के हाथ में है पड़ रही ॥
 जन रही है आँख का तारा वही ।
 जो हमारी आँख में है गड़ रही ॥

आठ आठ आँसू

१५३

लाज जब रख सके न वेवों की ।
 तब भला किस तरह लजायें वे ॥
 घर बसे किस तरह हमारा तब ।
 और का घर अगर बसायें वे ॥

गोद में ईसाइयत इसलाम की ।
 बेटियाँ बहुयें लिटा कर हम लटे ॥
 आह ! घाटा पर हमें घाटा हुआ ।
 मान वेवों का घटा कर हम घटे ॥

जो बहक वेवा निकलने लग गई ।
 पड़ गया तो बढ़तियों का काल भी ॥
 आबरू जैसा रतन जाता रहा ।
 खो गये कितने निराले लाल भी ॥

देखता हूँ कि जाति दूवेगी ।
 है जमा नित्त हो रहा आँसू ॥
 लाखहा वेगुनाह वेवों की ।
 आँख से है घड़ों बहा आँसू ॥

रंज वेवों का देखती बेला ।
 बैठती आँख, टूटती छाती ॥
 जो न रखते कलेजे पर पत्थर ।
 आँख पथरा अगर नहीं जाती ॥

नापाकपन

देख कुल की देवियाँ कँपने लगीं ।
 रो उठी मरजाद बेवों के छले ॥
 जो चली गंगा नहाने, क्यों उसे ।
 पाप - धारा में वहाने हम चले ॥

रंग बेवों का विगड़ते देख कर ।
 किस लिये हैं ढंग से मुँह मोड़ते ॥
 जो सुधर तीरथ बनाती गेह को ।
 क्यों उसे हैं तीरथों में छोड़ते ॥

जोग तो वह कर सकेगी ही नहीं ।
 जिस किसी को भोग ही की ताक हो ॥
 जो हमीं रखें न उस का पाकपन ।
 पाक तीरथ क्यों न तो नापाक हो ॥

जब कि बेवा हैं गिरी ही, तो उन्हें ।
 दे न देवें पाप का थैला कभी ॥
 मस्तियों से चूर दिल के मैल से ।
 तीरथों को कर न दें मैला कभी

वेटियाँ

हैं तभी से पड़ रहीं जंजाल में ।
 जिन दिनों वे थीं नहीं पूरी खिली ॥
 धूल में ही दिन ब दिन हैं मिल रहीं ।
 फूल की ऐसी हमारी लाड़िली ॥

हैं सदा विकती भुगतती दुख बहुत ।
 धूम है उन के उखाड़ पछाड़ की ॥
 हम भले ही लड़खड़ाती जीभ से ।
 बात कह लें लड़कियों के लाड़ की ॥

वेटियाँ छिलते कलेजे को कभी ।
 सामने आ खोल भी सकतीं नहीं ॥
 किस लिये हम फेर दें उन पर छुरी ।
 जो कि मुँह से बोल भी सकती नहीं ॥

वेटियाँ जो सर्कीं नहीं चिल्ला ।
 बारहा दुख बहुत अँगेजे पर ॥
 तो कभी क्यों न हाथ रख देखें ।
 हम उछलते हुए कलेजे पर ॥

फूल जैसी के लिये भी काठ बन ।
 कब सके हम धूल में रस्सी न बट ॥
 आज हम हैं चट उसी को कर रहे ।
 जो नहीं दिखला सकी जी की कचट ॥

१५६

चुभते चौपदे

मांस का वह है न, औ वह पास है ।
 जिस किसी के, हैं नहीं वे भी सगे ॥
 जो कलेजा है कलप जाता नहीं ।
 ठेस लड़की के कलेजे में लगे ॥

खेह होते देख सुन्दर देह को ।
 नेह - धारें हैं नहीं जिस में वही ॥
 जो न पिघला देख कलियाँ सूखती ।
 वह कलेजा है कलेजा ही नहीं ॥

बाप ही ढाह जो विपद देवे ।
 तो किसे वह पुकारने जाती ॥
 आह ! सारी विपत्तियों में ही ।
 जो रही बाप बाप चिल्लाती ॥

उस बुरी चाह का बुरा होवे ।
 जो कि दे वोर वेटियाँ कारी ॥
 चाहते हम जिसे • रहे उस की ।
 हो गई चूर चाहतें सारी ॥

मान है, उन में अभी मरजाद है ।
 वेटियों को मान कैसे लें मिसें ॥
 तो भला कैसे न माँगें मौत वे ।
 जो जवानी की उममें ही पिसें ॥

आठ आठ आँसू

१५७

लड़कियों को न बेतरह लूटें ।
 भूल उन का लहू न हम गारें ॥
 वे अगर हाथ का खेलौना हैं ।
 तो न उन को खेला खेला मारें ॥

क्यों न यह सोचा गया, हम किस लिये ।
 सुख सदा विलसें, सदा वे दुख सहें ॥
 क्यों कराते हम फिर कायाकल्प ।
 क्यों कल्पती बेटियाँ वहन रहें ॥

क्यों कलेजा थाम कर रोवें न वे ।
 बेटियाँ कैसे न तो दुख में सनें ॥
 मा बने अनजान सब कुछ जान कर ।
 आँख होते बाप जो अंधे बनें ॥

दुख भला किस तरह कहें उस का ।
 जो पड़ी हो विपत्ति - घानी में ॥
 दुख उठा मार मार मन अपना ।
 जो मरी हो भरी जवानी में ॥

१५८

चुभते चौपदे

वेजोड़ व्याह

वंस में घुन लगा दिया उसने ।
 औ नई पौध की कमर तोड़ी ॥
 जाति को है तवाह कर देती ।
 एक वेजोड़ व्याह की जोड़ी ॥

जो कली है खिल रही उसके लिये ।
 वर पके, सूखे फलों जैसा न हो ॥
 दो दिलों में जाय जिस से गाँठ पड़ ।
 भूल गाँठजोड़ा कभी ऐसा न हो ॥

है उसे चाह रंगरलियों की ।
 हैं इसे उलझने नहीं थोड़ी ॥
 क्यों न जाती उधेड़वुन में पड़ ।
 एक अल्हड़ अधेड़ की जोड़ी ॥

आह ! घुन देह में लगा देगी ।
 औ बनायेगी वाघ को गोरू ॥
 आठ दस साल के जमूरे की ।
 बीस बाईस साल की जोरू ॥

है समय पर फूलना फलना भला ।
 बात कोई है न असमय की भली ॥
 अधखिले सब फूल ही हैं अधखिले ।
 है सभी कच्ची कली कच्ची कली ॥

आह ! वचपन से पत्नी जो गोद में ।
 वह बिना ही आग सब दिन क्यों जले ॥
 जो कि जगने जोग वच्चे के हुई ।
 बाँध दें उस को न वच्चे के गले ॥

पाप को लोग भाँप लेते हैं ।
 पत रहेगी कभी न पत खोये ॥
 वेटियाँ व्याह दूधपीते से ।
 बन सकेंगे न दूध के धोये ॥

मिल सकेगा सुख न वह धन धाम से ।
 दुख न मेटेंगी मुहर की पेटियाँ ॥
 तज सयानप कमसिनों से किस लिये ।
 व्याह हम देवें सयानी वेटियाँ ॥

है बड़ी बात ही बड़ा करती ।
 चाहिये सूझ बूझ बड़कों को ॥
 हो सयाने करें लड़कपन क्यों ।
 लड़कियाँ दें कभी न लड़कों को ॥

लोग वेढंग वेसमझ हम से ।
 मिल सकेंगे कहीं न दूँदे से ॥
 आप ही हम तबाह होते हैं ।
 वेटियाँ व्याह व्याह बूढ़े से ॥

बूढ़े का व्याह

आप जो वे मर रहे हैं तो मरें ।
 क्यों मुसीबत वेमुँही सिर मढ़ेंगे ॥
 वे चेताये क्यों नहीं हैं चेतते ।
 जो चिता पर आज कल में चढ़ेंगे ॥

हो वड़े बूढ़े न गुड़ियों को ठों ।
 पाउडर मुँह पर न अपने वे मलें ॥
 व्याह के रंगीन जामा को पहन ।
 बेइमानी का पहन जामा न लें ॥

छोकरी का व्याह बूढ़े से हुए ।
 चोट जी में लग गई किसके नहीं ॥
 किस लिये उस पर गड़ाये दाँत वह ।
 दाँत मुँह में एक भी जिसके नहीं ॥

जो कलेवा काल का है बन रहा ।
 वह बने खिलती कली का भौर क्यों ॥
 भौर सिर पर रख बनी का बन बना ।
 बेहयाओं का बने सिरभौर क्यों ॥

छाँह भी तो वह नहीं है काँड़ती ।
 क्योंकि बन सकता नहीं अब छैल तू ॥
 ढीठ बूढ़े लाद बोझा लाड़ का ।
 क्यों बना अलबेलियों का वैल तू ॥

आठ आठ आँसू

१६१

तब भला क्या फेर में छवि के पड़ा ।
 आँख से जब देख तू पाता नहीं ॥
 तब छछूंदर क्या बना फिरता रहा ।
 जब छवीली छाँह छू पाता नहीं ॥

दिन व दिन है सूखती ही जा रही ।
 हो गई बेजान बूढ़े की बहू ॥
 जब कि दिल को थाम कर दूल्हा बने ।
 तब न लेवें चूस दुलहिन का लहू ॥

चाहें कितनी बहुत कुचली गई ।
 क्यों न टूटी टाँग बूढ़े टेक की ॥
 एक दुनिया से उठा है चाहता ।
 और है उठती जवानी एक की ॥

राज की, साज वाज, सज धज की ।
 है न वह दान मान की भूखी ॥
 मूढ़ बूढ़े करें न मनमानी ।
 है जवानी जवान की भूखी ॥

निज लट्टू की देख कर सूरत लटी ।
 आँख में उस की उतरता है लहू ॥
 आँख बूढ़े की भले ही तर बने ।
 देख रस की बेलि अलबेली बहू ॥

कच्चे फूल

हो गया व्याह लग गई जोंके ।
 फूल से गाल पर पड़ी झाँई ॥
 सूखती जा रहीं नसें सब हैं ।
 भीनने भी मसें नहीं पाई ॥

पड़ गया किस लिये खटाई में ।
 क्यों चढ़ी रूप रंग की वाई ॥
 फिर गई काम की दुहाई क्यों ।
 मूँछ भी तो अभी नहीं आई ॥

लथेड़

हैं बहुत वच्चे भटकते फिर रहे ।
 औरतें भी ठोकरें हैं खा रही ॥
 अब भला परदा रहेगा किस तरह ।
 जो उठेगा आँख का परदा नहीं ॥

वे विचारी फूल जैसी लड़कियाँ ।
 जो नहीं बलिदान होते भी अड़ीं ॥
 आँखवाले हम तुम्हें कैसे कहें ।
 जब न आँखें आज तक उन पर पड़ीं ॥

आठ आठ आँसू

१६३

वेवसी वेविसात वेवों की ।
 सामने जब विसूरती आई ॥
 सिर गया घूम, वन गये बुत हम ।
 वात मुँह से नहीं निकल पाई ॥

देख कर नीच हाथ से नुचती ।
 एक खिलती हुई अवोल कली ॥
 चाहिये तो न खोलना फिर मुँह ।
 वात मुँह से अगर नहीं निकली ॥

सोच ले वात, मत सितम पर तुल ।
 तू उन्हें दे न भीख की झोली ॥
 तब सके वोले और वेटी क्यों ।
 जब सकी कुल न वोले मुँहवोली ॥

वेटियों को वेंच वेवों को सता ।
 क्या कलेजे में नहीं चुभती सुई ॥
 नाम अपना हम हँसाते क्यों रहें ।
 है हँसी थोड़ी नहीं अब तक हुई ॥

लताड़

क्या किसी खोह में पड़ी पा कर ।
 लड़कियाँ लोग हैं उठा लाते ॥
 जो बड़े ही कपूत लड़कों से ।
 हैं तिलक वेधड़क चढ़ा आते ॥

हैं न भलमंसियाँ जिन्हें प्यारी ।
 है जिन्हें रूपचन्द से नाता ॥
 जब न मुट्ठी गरम हुई उन की ।
 क्यों भला तब तिलक न फिर आता ॥

नीचपन, नंगपन, निठुरपन का ।
 है जिन्होंने कि ले लिया ठीका ॥
 न्योत करके विपद बुलाते हैं ।
 लोग उनके यहाँ पठा टीका ॥

लोग इतने गिरे जहाँ के हैं ।
 कौड़ियों तक सहेज घर भेजा ॥
 पिस गई लड़कियाँ जहाँ जा कर ।
 हैं वहाँ भोजना तिलक वेजा ॥

पास जिन के नहीं कलेजा है ।
 बेटियाँ वेंच जो अघाते हैं ॥
 वे लगा कर कलंक का टीका ।
 मोल टीका बहुत लगाते हैं ॥

आठ आठ आँसू

१६५

क्या सयानी हुई नहीं लड़की ।
लाख फटकार ऐसे कच्चे को ॥
आप वह बन गया निरा वच्चा ।
दे तिलक आज एक वच्चे को ॥

जो भली राह पर चला न सके ।
तो बुरी राह भी न बतलाये ॥
हो तिलक एक नामवर झुल के ।
क्या तिलक लंठ के यहाँ लाये ॥

लड़कियाँ बोल जो नहीं सकतीं ।
तो बला में उन्हें फँसायें क्यों ॥
भेज करके बुरी जगह टीका ।
हम उन्हें धूल में मिलायें क्यों ॥

जन्मलाभ

लोकसेवा

हड्डियाँ तो काम देती हैं नहीं ।
काम आता है न उस का काम ही ॥
वह बना है लोकसेवा के लिये ।
साथ देना हाथ का है काम ही ॥

जो उसे उस का सहारा हो नहीं ।
तो सकेगा काम पल भर चल नहीं ॥
जो न सेवा तेल बल देवे उसे ।
तो सकेगा हाथ दीया बल नहीं ॥

तो पनपता न हित-हवा पा कर ।
मिल गये प्यार-जल नहीं पलता ॥
जो न सेवा सहायता देती ।
हाथ-पौधा न फूलता फलता ॥

तब छबीले हाथ क्या बनते रहे ।
जो न सेवा कर छगूनी छवि बनी ॥
है कलस वह जगमगाती जोत यह ।
है चँदोवा हाथ सेवा चाँदनी ॥

जन्मलाभ

१६७

एक बरसात है अगर प्यारी ।
 दूसरा तो हरा भरा वन है ॥
 जड़ हुए हाथ के लिये जग में ।
 लोक - सेवा जड़ी सजीवन है ॥

जो जड़ाऊ ताज बतलावें उसे ।
 तो कहें कलगी इसे न्यारी बड़ी ॥
 हाथ शमले के सजाने के लिये ।
 लोकसेवा मोतियों की है लड़ी ॥

राज-सुख तो न दे सकेंगे सुख ।
 लोक-हित में रमा नहीं जो मन ॥
 धन्य जो हों न हाथ सेवा कर ।
 क्या बने तो धनी कमा कर धन ॥

छोड़ कर भाव देवतापन का ।
 दैतपन किस लिये न दिखलाता ॥
 साथ है जब न लोक - सेवा बल ।
 हाथ-बल तब न क्यों बला लाता ॥

हाथ को अपने जलाते क्या रहे ।
 कर भली करतूत दिखलाई न जो ॥
 तो लगाते छाप क्या थे दूसरे ।
 लोक - सेवा - छाप लग पाई न जो ॥

१६८

चुभते चौपदे

धन कमायें तो करें उपकार मी ।
 यह अगर है काल तो वह लाल है ॥
 धन तजें पर लोक - सेवा तज न दें ।
 हाथ का यह मैल है वह माल है ॥

लोक - सेवा ललक रहे करता ।
 काल जाये न काल का भी वन ॥
 दे कमल क्यों न छोड़ कमला को ।
 हाथ कोमल तजे न कोमलपन ॥

दूसरे तोर मोर क्यों न करें ।
 क्यों नहीं हाथ तुम अलग रहते ॥
 क्यों नहीं पैर प्यार - धारा में ।
 लोक - सेवा तरंग में बहते ॥

जब लगे तब हाथ परहित में लगे ।
 है जनमता जीव जग - हित के लिये ॥
 लोक क्या, परलोक भी वन जायगा ।
 जी लगा कर लोक की सेवा किये ॥

हिल गया उन के हिलाने से जगत ।
 देख कर दुख दूसरों का जो हिले ॥
 ले बलायें लोग सारे लोक के ।
 जाँयगे बल लोक - सेवा - बल मिले ॥

जन्म लाभ

१६९

है भला धन लगे भलाई में ।
 हो भले काम पर निछावर तन ॥
 लोभ यश लाभ का हमें होवे ।
 लोक - हित - लालसा लुभा ले मन ॥

जातिसेवा

काम मुँह देख देख कर न करे ।
 मुँह किसी और का कभी न तके ॥
 जातिसेवा करे अथक वन कर ।
 न थके आप औ न हाथ थके ॥

हो भला, वह हो भलाई से भरा ।
 भाव जो जी में जगाने से जगे ॥
 जातिहित, जनहित, जगतहित में उमग ।
 जी लगायें जो लगाने से लगे ॥

कौन ऐसा भला कलेवा है ।
 वह भली है अमोल मेवा से ॥
 फेर में पड़ न जाय जन कोई ।
 फिर न जी जाय जाति - सेवा से ॥

१७०

चुभते चौपदे

नाम सेवा का न वे लें भूल कर ।
 देख दुख जिनके न दिल हों हिल गये ॥
 बोझ उन पर रख वनें अंधे नहीं ।
 बेतरह कंधे अगर हों छिल गये ॥

जाति - हित में ललक लगे कैसे ।
 ले लुभा जब कि लाभ सा मेवा ॥
 जब कि आराम में रमा मन है ।
 हो सकेगी न लोक की सेवा ॥

नींव है वह बेहतरी - दीवार की ।
 है सहज सुख - द्वार की सुन्दर लड़ी ॥
 है जगत को जीत लेने की कला ।
 जाति-सेवा जाति-हित की है जड़ी ॥

जो रहेगा जाति - हित पौधा हरा ।
 तो हरा सुख रख, सकेंगे रह भले ॥
 हम सकेंगे हर तरह से फूल फल ।
 देस - सेवा - बेलि के फूले फले ॥

गेह की क्या, देह की सुध भी गँवा ।
 भूल जाना, जो पड़े मरना मरें ॥
 खा सकें या खा सकें मेवा नहीं ।
 लोग सेवा के लिये सेवा करें ॥

पारस परस

धर्म

जोत फूटी गया अँधेरा टल ।
हो गई सूझ सूझ पाया धन ॥
दूर जन-आँख-मल हुआ जिस से ।
धर्म है वह बड़ा विमल अंजन ॥

रह सका पी जिसे जगत का रस ।
रस - भरा वह अमोल प्याला है ॥
जल रहे जीव पा जिसे न जले ।
धर्म - जल - सोत वह निराला है ॥

है सकल जीव को सुखी करता ।
रस समय पर बरस बहुत न्यारा ॥
है भली नीति - चाँदनी जिस की ।
धर्म है चाँद वह बड़ा प्यारा ॥

१७२

चुभते चौपदे

छाँह प्यारी सुहावने पत्ते ।
 डहडही डालियाँ तना औँधा ॥
 हैं भले फूल फल भरे जिस में ।
 धर्म है वह हरा भरा पौधा ॥

तो न बनता सुहावना सोना ।
 औ वड़े काम का न कहलाता ॥
 जीव - लोहा न लौहपन तजता ।
 धर्म - पारस न जो परस पाता ॥

ज्ञान - जल का सुहावना बादल ।
 प्रेम - रस का लुभावना प्याला ॥
 है भले भाव - फूल का पौधा ।
 धर्म है भक्ति - बेलि का थाला ॥

जो कि निर्जीव को सजीव करें ।
 वह उन्हीं बूटियों - भरा बन है ॥
 धर्म है जन समाज का जीवन ।
 जाति - हित के लिये सजीवन है ॥

धर्म पाला कलह कमल का है ।
 रंज मल के निमित्त है जल कल ॥
 है पवन वेग बैर बादल का ।
 लग की आग के लिये है जल ॥

धर्म की धाक

है चमकता चाँद, सूरज राजता ।
 जोत प्यारी है सितारों में भरी ॥
 है विलसती लोक में उस की कला ।
 है धुरे पर धर्म के धरती धरी ॥

धर्म - बल से जगमगाती जोत है ।
 है धरा दल फूल फल से सोहती ॥
 जल वरस, बादल बनाते हैं सुखी ।
 है हवा बहती महुँकती मोहती ॥

छाँह दे फूल से फवीले बन ।
 फल खिला है उदर भरा करता ॥
 धर्म के रंग में रँगा पौधा ।
 रह हरा चित्त है हरा करता ॥

क्यों बहरते न पर - हितों से भर ।
 हैं उन्हें धर्म - भाव बल देते ॥
 चोटियाँ चूम चूम पेड़ों की ।
 मेघ हैं घूम घूम जल देते ॥

धर्म - जादू न जो चला होता ।
 तो न जल - सोत वह बहा पाता ॥
 किस तरह तो पसीजता पत्थर ।
 क्यों पिघल दिल पहाड़ का जाता ॥

१७४

चुभते चौपदे

लोक - हित में न जो लगे होते ।
 किस तरह ताल पोखरे भरते ॥
 धर्म की झार जो न रस रखती ।
 तो न झरने सदा झरा करते ॥

हैं लगातार रात दिन आते ।
 भूलता है समय नहीं वादा ॥
 धर्म - मर्यादा से थमा जग है ।
 है न तजता समुद्र मर्यादा ॥

जो न मिलती चमक दमक उस की ।
 तो चमकता न एक भी तारा ॥
 धर्म की जोत के सहारे ही ।
 जगमगा है रहा जगत सारा ॥

धर्म की धुन

है पनपने फूट को देता नहीं ।
 धर्म आपस में करा कर संगतें ॥
 है बढ़ाता पाठ बढ़ती के पढ़ा ।
 है चढ़ाता एकता की रंगतें ॥

धर्म है काम का बना देता ।
 काहिली दूर काहिलों की कर ॥
 खोल आँखें अकोर वालों की ।
 क्रूर की काढ़ काढ़ कोर कसर ॥

धर्म की चाल ही निराली है ।
 वह चलन को सुधार है लेता ॥
 हैं चलाता भली भली चालें ।
 वह कुचल है कुचाल को देता ॥

काढ़ता धर्म उस कसर को है ।
 ध्यान जो नाम का नहीं रखती ॥
 काम उस का तमाम करता है ।
 जो 'कमी' काम का नहीं रखती ॥

धर्म ने उस के कसाले सब हरे ।
 हैं सुखों के पड़ गये लाले जिसे ॥
 है वही पिसने नहीं देता उन्हें ।
 पीसते हैं पीसने वाले जिसे ॥

जो दोहाई न धर्म की फिरती ।
 तो विपत पर विपत वदी ढाती ॥
 काट तो काटती कलेजों को ।
 चाट तो चाट और को जाती ॥

१७६

चुभते चौपदे

धर्म की देखभाल में होते ।
 है वहँक वेतरह न वहँकाती ॥
 है बुराई नहीं बुरा करती ।
 पालिसी पीसने नहीं पाती ॥

धर्म के चलते सितम होता नहीं ।
 जाति कोई है नहीं जाती जटी ॥
 धूल शौंकी आँख में जाती नहीं ।
 धूल में जाती नहीं रस्सी बटी ॥

धर्म का बल

रंग अनदेखनपन नहीं लाया ।
 अनभलों को न सुध रही तन की ॥
 धर्म की आनवान के आगे ।
 बन बनाये सकी न अनवन की ॥

बद लतों की बदल बदल रंगत ।
 धर्म बद को सुधार लेता है ॥
 दूर करता ठसक ठसक की है ।
 ऐंठ का कान ऐंठ देता है ॥

धूल में रस्सी न बट धाकें सकीं ।
 देख करके धर्म की आँखें कड़ी ॥
 कर न अंधाधुंध पाई धाँधली ।
 दे नहीं धोखा सकी धोखाधड़ी ॥

कर धमाचौकड़ी न धूत सके ।
 भूत के पूत चौक कर भागे ॥
 कर सका ऊधमी नहीं ऊधम ।
 धर्म की धूम धाम के आगे ॥

देख कर धर्म धर पकड़ होती ।
 है न चेपारपन विपत ढाता ॥
 साँसतें साँस हैं न ले सकतीं ।
 औ सितम कर सितम नहीं पाता ॥

धर्म उस वान को बदलता है ।
 है सगी जो कि बदनसावी की ॥
 जाति-सर की बल बनी जो है ।
 वह कसर है निकालता जी की ॥

धर्म की धौल है उसे लगती ।
 चाल जो देस को करे नटखट ॥
 भूल जो डाल दे भुलावों में ।
 चूक जो जाति को करे चौपट ॥

१७८

चुभते चौपदे

है बनाता बुरी गतें उन की ।
 जो तरंगें न जाति - मुख देखें ॥
 धर्म नीचा उन्हें दिखाता है ।
 जो उमंगें न देस - दुख देखें ॥

धर्म है उन को रसातल भेजता ।
 जिन वखेड़ों से न जन होवे सुखी ॥
 जो बनावट जाति-दिल देवे दुखा ।
 जो दिखावट देस को कर दे दुखी ॥

चोट करता धर्म है उस चूक पर ।
 काट दे जो देस - ममता - मूल को ॥
 लोग जिस से जाति को हैं भूलते ।
 है मिलाता धूल में उस भूल को ॥

धर्म है बीज प्यार का वोता ।
 बात विगड़ी हुई बनाता है ॥
 जो नहीं मानता मनाने से ।
 मित्रतें कर उन्हें मनाता है ॥

जो नहीं हेल मेल कर रहते ।
 वह उन्हें हित बना हिलाता है ॥
 मैल कर दूर मैल वालों का ।
 धर्म मैलान ही मिलाता है ॥

ठोकरें खा जो कि मुँह के बल गिरे ।
 है उन्हें उस ने समय पर बल दिया ॥
 धर्म ने ही भर रगों में विजलियाँ ।
 कायरों का दूर कायरपन किया ॥

धर्म का कमाल

धर्म ऊँचे न जो चढ़ा पाता ।
 तो न ऊँचे किसी तरह चढ़ती ॥
 जो बढ़ाता न धर्म बढ़ कर के ।
 तो बढ़ी जाति किस तरह बढ़ती ॥

क्यों बहुत देस में न हो बसती ।
 क्यों न हो रंग रंग की जनता ॥
 धर्म निज रंगतें दिखा न्यारी ।
 है उसे एक रंग में रँगता ॥

है उभर कर न देस जो उभरा ।
 धर्म ही ने उसे उभारा है ॥
 हार कर भी कभी नहीं हारा ।
 वह गिरी जाति का सहारा है ॥

१८०

चुभते चौपदे

मर रही जाति के जिलाने को ।
 धर्म है सैकड़ों जतन करता ॥
 है वही जान डालता तन में ।
 है रगों में वही लहू भरता ॥

है जहाँ दुख दरिद्र का पटपर ।
 धर्म सुख - सोत वाँ लसाता है ॥
 बेजड़ों की जमा जमा कर जड़ ।
 देस उजड़ा हुआ बसाता है ॥

जाति जो हो गई कई टुकड़े ।
 धर्म हिल मिल उसे मिलाता है ॥
 जोड़ता है अलग हुई कड़ियाँ ।
 वह जड़ी जीवनी पिलाता है ॥

खोल आँखें, हिला डुला बहला ।
 कर सजग काम में लगाता है ॥
 धर्म कर सब जुगुत जगाने की ।
 सो गई जाति को जगाता है ॥

धर्म का बल मिल गये सारी बला ।
 जो भगाने से नहीं है भागती ॥
 तो जगाये भाग जागेगा नहीं ।
 लाख होवे जाति जीती जागती ॥

धर्म की करामात

जब भलाई मिली नहीं उस में ।
 किस तरह घर भली तरह चलता ॥
 क्यों अँधेरा वहाँ न छा जाता ।
 धर्म - दीया जहाँ नहीं बलता ॥

जो कि पुतले बुराइयों के हैं ।
 क्यों न उन में भलाईयाँ भरता ॥
 देवतापन जिन्हें नहीं छूता ।
 है उन्हें धर्म देवता करता ॥

जो रहे छीलते पराया दिल ।
 क्यों न वे छल - भरे छली होंगे ॥
 जायगा बल बला न बन कैसे ।
 धर्म - बल से न जो बली होंगे ॥

है बड़ा ही अमोल वह सौदा ।
 मतलबों - हाथ जो न पाया विक ॥
 मूल है धर्म प्यार - पौधे का ।
 है महल - मेल - जोल का मालिक ॥

१८२

चुभते चौपदे

है अँधेरा जहाँ पसरता वाँ ।
 धर्म की जोत का सहारा है ॥
 डर - भरी रात की अँधेरी में ।
 वह चमकता हुआ सितारा है ॥

धूत - पन - भूत भूतपन भूला ।
 वच वचाये सकी न वेवाकी ॥
 धर्म के एक दो लगे चाँटे ।
 भागती है चुड़ैल - चालाकी ॥

धर्म - जल पाकर अगर पलता नहीं ।
 तो न सुख - पौधा पनपता दीखता ॥
 वेलि हित की फैलती फवती नहीं ।
 फूलती फलती नहीं बढ़ती लता ॥

है जिसे धर्म की गई लग लौ ।
 हो न उस की सकी सुरुचि फीकी ॥
 है नहीं डाह डाहती उस को ।
 है जलाती नहीं जलन जी की ॥

धर्म देता उसे सहारा है ।
 जो सहारा कहीं न पाता है ॥
 टूटता जी न टूट सकता है ।
 दिल गया बैठ वह उठाता है ॥

वाँध - तदवीर वाँध देने से ।
 कब न भरपूर भर गये रीते ॥
 व्योत कर धर्म के बनाने से ।
 वन गये लाखहा गये वीते ॥

धर्म के सच्चे धुरे के सामने ।
 दाल जग - जंजाल की गलती नहीं ॥
 भूलती है नटखटों की नटखटी ।
 हैकड़ों की हैकड़ी चलती नहीं ॥

धर्म उस का रंग देता है बदल ।
 जाति जो दुख - दलदलों में है फँसी ॥
 बेकसों की बेकसी को चूर कर ।
 दूर करके बेवसों की बेवसी ॥

खल नहीं सकता उन्हें खलपन दिखा ।
 छल नहीं सकता उन्हें कोई छली ॥
 खलबली उन में कभी पड़ती नहीं ।
 धर्म - बल जिन को बनाता है बली ॥

किस लिए अंधी न हित-आँखें बनें ।
 धर्म का दीया गया वाला नहीं ॥
 क्यों न वाँ अँधेर - अँधियाला घिरे ।
 है जहाँ पर धर्म - उँजियाला नहीं ॥

१८४

चुभते चौपदे

पाप से पेचपाच पचड़ों से ।
 प्यार के साथ पाक रखती है ॥
 धाक है और धाक से न रही ।
 धर्म की धाक धाक रखती है ॥

परिशिष्ट

जी की कचट

छतुका

किसी के कभी यों वुरे दिन न आये ।
 किसी ने कभी दुख न ऐसे उठाये ॥
 भला इस तरह हाथ किस ने बँधाये ।
 किसी ने कभी यों न आँसू बहाये ॥

हमारी तरह बात किस ने बिगाड़ी ।
 उलहती हुई बेलि किस ने उखाड़ी ॥

हमारे लिये आन की बात कैसी ।
 किसी की हुई आँख नीची न ऐसी ॥
 हमारी गई है बिगड़ चाल जैसी ।
 किसी की कभी चाल बिगड़ी न वैसी ॥

किसी के न यों उलझने पास आई ।
 किसी ने बुरी ठोकरें यों न खाई ॥
 किसी ने हमारी तरह है न खोया ।
 किसी ने नहीं नाम हम सा डुबोया ॥
 किसी ने नहीं इस तरह हाथ धोया ।
 भला कौन यों मूँद कर आँख सोया ॥
 किसी को गई पीठ कब यों लगाई ।
 भला यों गई धूल किस की उड़ाई ॥
 कभी यों न पतले हुए दिन किसी के ।
 कभी यों हुए रँग किसी के न फीके ॥
 किसी ने किये काम कब यों हँसी के ।
 कभी इस तरह हम बुरे थे न जी के ॥
 किसी ने कभी है न इतना अँगेजा ।
 भला थाम किस ने लिया यों कलेजा ॥
 गिरे जिस तरह हम गिरेगा न कोई ।
 कभी इस तरह पत किसी ने न खोई ॥
 किसी की न मरजाद यों फूट रोई ।
 किसी ने कभी यों न लुटिया डुबोई ॥
 हमारी तरह धाक किस ने गँवाई ।
 किसी ने न यों आग घर में लगाई ॥
 हमें हैं बहुत डाह के ढंग भाते ।
 हमीं फूट को हैं गले से लगाते ॥

हमीं वैर को आँख पर हैं बिठाते ।

हमीं हैं धरों बीच काँटे बिछाते ॥

हमीं ने सगों का लहू तक बहाया ।

हमीं ने वहाँक जाति बेड़ा डुबाया ॥

हमारी रगों में भरी है बुराई ।

खुटाई सभी बात में है समाई ॥

हमें भूल सी अब गई है भलाई ।

हमें देख कर है कलपती सचाई ॥

हमीं हाथ हैं बेढवों का बटाते ।

हमीं बेतरह हैं अड़ंगे लगाते ॥

दिखावट हमें है बहुत ही लुभाती ।

बनावट बिना नींद ही है न आती ॥

हमें ऐंठ की रंगतें हैं रिझाती ।

ठसक की सभी बात ही है सुहाती ॥

बड़ा आज बेढंग पन है हमारा ।

सगों से हमीं कर रहे हैं किनारा ॥

न जानें हुई क्या उमंगें हमारी ।

उभरती नहीं आज चाहें उमारी ॥

बहुत ही जँची काम की बात सारी ।

उतरती नहीं है गले से उतारी ॥

गई गाँठ कायरपने से बँधाई ।

पड़ी वाँट में है हमारे कचाई ॥

नहीं हम किसी के सँभाले सँभलते ।
 नहीं हम बुरे ढंग अपने बदलते ॥
 पकड़ ठीक राहें हमीं हैं न चलते ।
 बुरी लीक पर से हमीं हैं न टलते ॥
 समय ओर आँखें हमीं हैं न देते ।
 सबेरा हुआ करवटें हैं न लेते ॥

निकम्मा पन

नहीं चाहते जो कभी काम करना ।
 नहीं चाहते जो कि जौ भर उभरना ॥
 नहीं चाहते जो कमर कस उतरना ।
 कठिन है कहीं पाँव जिन का ठहरना ॥
 करेंगे न तिल भर बहुत जो बर्केंगे ।
 भला कौन सा काम वे कर सकेंगे ॥
 जिन्हें भूल अपनी गई बात सारी ।
 भली सीख लगती जिन्हें है न प्यारी ॥
 जिन्होंने नहीं चाल अपनी सुधारी ।
 जिन्होंने नहीं आँख अब तक उधारी ॥
 भला क्यों न वे सब गँवा सब सहेंगे ।
 इसी तौर से वे बिगड़ते रहेंगे ॥

सच्चे काम करनेवाले

दुखों की गरज क्यों न धरती हिलावे ।
 लगातार कितने कलेजे कँपावे ॥

विपद पर विपद क्यों न आँखें दिखावे ।

विगड़ काल ही सामने क्यों न आवे ॥

कभी सूरमें हैं न जीवट गँवाते ।

बलायें उड़ाते हैं चुटकी वजाते ॥

रुकावट उन्हें है नहीं रोक पाती ।

उन्हें उलझने हैं नहीं धर दवाती ॥

न पेचीदगी ही उन्हें है गढ़ाती ।

न कठिनाइयाँ हैं उन्हें कुछ जनाती ॥

विचलते नहीं हैं कभी आनवाले ।

उन्होंने मसल क्य न डाले कसाले ॥

पड़े भीड़ जौहर उन्होंने दिखाये ।

खुले वे कसौटी कुदिन पर कसाये ॥

निखरते मिले वे विपद आँच पाये ।

वने ठीक कुन्दन गये ज्व तपाये ॥

सभी आँख में जो सके फूल से फव ।

मिले वे न काँटे दुखों में खिले कव ॥

न समझा कठिन पाँव बन में जमाना ।

कभी कुछ बड़े पर्वतों को न माना ॥

हँसी खेल जाना समुन्दर थहाना ।

पड़े काम आकाश पाताल छाना ॥

कठिन से कठिन काम भी जो सके कर ।

उन्होंने मुद्दिस कौन सी की नहीं सर ॥

उन्हें काठ उकठे हुए का फलाना ।
 उन्हें दूब का पत्थरों पर जमाना ॥
 उन्हें गंग धारा उलट कर बहाना ।
 उन्हें ऊसरों बीच बीये उगाना ॥
 बहुत ही सहल काम सा है जनाता ।
 भला साहसी क्या नहीं कर दिखाता ॥

अड़ंगे लगाना न कुछ काम आया ।
 वही गिर गया पाँव जिस ने अड़ाया ॥
 दिया डाल बल झंझटों को बढ़ाया ।
 न तब भी उन्हें बैरियों ने डिगाया ॥
 जिन्हें काम कर डालने की लगी धुन ।
 सदा ही सके फूल काँटों में वे चुन ॥
 जिन्होंने न औसान अपना गँवाया ।
 जिन्होंने कभी जी न छोटा बनाया ॥
 हिचकना जिन्हें भूल कर भी न भाया ।
 जिन्होंने छिड़ा काम कर ही दिखाया ॥
 न माना उन्होंने बखेड़ों का टोना ।
 न जाना कि कहते किसे हैं 'न होना' ॥

चले चाल गहरी नहीं वे बिचलते ।
 नहीं वे कतर व्योत से हैं दहलते ॥
 किये लाख चतुराइयाँ हैं न टलते ।
 फँसे फन्द में हाथ वे हैं न मलते ॥

१६०

चुभते चौपदे

उन्हें तंगियाँ है नहीं तान पातीं ।

न लाचार लाचारियाँ हैं वनातीं ॥

पिछड़ना उन्हें है न पीछे हटाता ।

फिसलना उन्हें है न नीचे गिराता ॥

विचलना उन्हें है सँभलना सिखाता ।

गया दाँव है और हिम्मत बँधाता ॥

उलझ गुथियाँ हैं उमंगें बढ़ाती ।

धड़ेवंदियाँ हैं धड़क खोल जाती ॥

बढ़ा जी रखा काम का ढंग जाना ।

बखेड़ों दुखों उलझनों को न माना ॥

जिन्होंने हवा देख कर पाल ताना ।

जिन्हें आ गया वात बिगड़ी बनाना ॥

उन्होंने बड़े काम कर ही दिखाये ।

भला कब तरैया न वे तोड़ लाये ॥

ढाढ़स

सभी दिन कभी एक से हैं न होते ।

वहे हैं यहाँ साथ सुख दुख के सोते ॥

हँसे जो कभी थे वही ऊब रोते ।

मिले मंगते मोतियों को पिरोते ॥

अभी आज जो राज को था चलाता ।

वही कल पड़ा धूल में है दिखाता ॥

कभी फेर से है दिनों के न चारा ।
 सदा ही न चमका किसी का सितारा ॥
 विपद से न कोई सका कर किनारा ।
 कहाँ पर नहीं पाँव दुख ने पसारा ॥

हुई बेवसी दूर होनी टली कब ।

भला भाग से है किसी की चली कब ॥

न हो जो कि विगड़ा बना कौन ऐसा ।
 गिरा जो न होवे उठा कौन ऐसा ॥
 न हो जो कि उतरा चढ़ा कौन ऐसा ।
 घटा जो न होवे बढ़ा कौन ऐसा ॥

सदा एक सा है किसी का न जाता ।

यहाँ का यही ढंग ही है दिखाता ॥

चमकते दिनों बाद रातें अँधेरी ।
 घिरे बादलों बीच दूबी उँजेरी ॥
 पड़ी कीच में फूलवाली चँगोरी ।
 दहकती हुई आग की राख ढेरी ॥

हमें है यही बात सब दिन बताती ।

सदा ही घड़ी एक सी है न आती ॥

भला फिर कुदिन के लिये हम कहें क्या ।
 बुरी गत विपत्त के लिये हम कहें क्या ॥
 दरद औ दुखों के लिये हम कहें क्या ।
 गये छिन सुखों के लिये हम कहें क्या ॥

१९२

चुभते चौपदे

हमें है यही एक ही बात कहना ।
भला है न मन मार कर बैठ रहना ॥

कभी अब नहीं दिन हमारे फिरेंगे ।
न सँभलेंगे अब हम दिनों दिन गिरेंगे ॥
सदा पास वादल दुखों के धिरेंगे ।
कभी अब न सागर विपद का तिरेंगे ॥

सकेगा चमक अब न डूबा सितारा ।
उबर अब सकेगा न बेड़ा हमारा ॥

समझ सोच यों सोच में डूब जाना ।
गिरा हाथ औ पाँव जीवट गँवाना ॥
न जी से उमगना न हिम्मत दिखाना ।
अपाहिज बने काम से जी चुराना ॥

बुरा है. खनेंगे यही जड़ हमारी ।
विगड़ जायगी बन गई बात सारी ॥

अगर चाँद खो सब कला फिर पलेगा ।
अगर बीज मिल धूल में बढ़ चलेगा ॥
अगर काटने वाद केला फलेगा ।
अगर बुझ गये पर दिया फिर वलेगा ॥

भला तो न क्यों दिन फिरेंगे हमारे ।
दमकते मिले जब कि डूबे सितारे ॥

